वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 25
ISBN 978-93-82071-19-8

चौबीस तीर्थंकर

–प्रस्तुति –

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

तृतीय संस्करण	वीर नि.सं. 2538	मूल्य
1100 प्रतियाँ	आषाढ़ शु. चतुर्दशी	32/-रु.
	2 जुलाई 2012	

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

–: निर्देशक एवं सम्पादक :–

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

द्वितीय संस्करण, सन् 2002–2200 प्रतियाँ प्रकाशित

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

–स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश
रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

अनादिकाल से भूले-भटके हुए प्राणियों को धर्ममार्ग में लगाने के लिए, उनकी धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करने के लिए और परकल्याण के साथ-साथ स्वकल्याण के लिए आचार्यों ने बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना की है।

इसी परम्परा में बीसवीं शताब्दी की प्रथम बालसती पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका शिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी ने दो सौ से अधिक ग्रन्थ अपनी लेखनी से लिखे हैं। उसी श्रृंखला में वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का यह पुष्प भी आपके हाथों में है इसे पढ़कर इसकी सुगन्ध को लेकर आप अपने पुण्य की वृद्धि करें।

प्रस्तुत पुस्तक ''चौबीस तीर्थंकर'' पूज्य माताजी के गहन अध्ययन का प्रतिफल है। महापुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, महावीरपुराण, तिलोयपण्णति आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय करके पूज्य माताजी ने उसमें से सार निकालकर इस पुस्तक की रचना की है आज बड़े-बड़े पुराणग्रन्थों को पढ़ने के लिए किसी के पास समय नहीं है अतः सभी के लिए यह पुस्तक कुंजी के समान है।

प्रिय पाठकों! परम पूज्य भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीसों तीर्थंकर प्रत्येक जैन के लिए परमाराध्य हैं और इनका इतिहास भी परमपावन आदर्शों से समन्वित है।

करूणासागर, सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी, महामहिमाशाली तीर्थंकरों का परिचय देने वाली सरल एवं लघु पुस्तक का हिन्दी भाषा मे नितान्त अभाव था। ऐसे परमावश्यक कार्य की पूर्ति गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने की है।

पूज्य माताजी इसी प्रकार हमेशा पाठकों को नई दिशा प्रदान करती रहें यही वीरप्रभु से मंगलकामना है। पाठकगण इस पुस्तक को स्वयं पढ़ें एवं दूसेंरा को भी इसके महत्व से परिचित करावें यही इसकी सार्थकता होगी।

तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली प्रयाग दिगम्बर जैन तीर्थ पर परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के प्रथम चातुर्मास के उपलक्ष्य में दीपावली पर्व के शुभ अवसर पर प्रकाशत इस पुस्तक के प्रकाशन में श्रीमती सिन्धु सेठ ध.प. श्री मानू सेठ-मुंबई (महा.) ने ज्ञानदान स्वरूप अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया एतदर्थ संस्थान उनका आभारी है।

प्रस्तावना

-ब्र. कु. सारिका जैन (संघस्थ)

आज के इस अति आधुनिक युग में जिस प्रकार से प्रत्येक छोटे बच्चे को उसका नाम, उसके मम्मी, पापा, दादी, बुआ, चाचा, मौसी आदि के नाम, मकान नं., गली नं., घर का टेलीफोन नं., गाड़ी नं. आदि सब कुछ इसलिए सिखा दिया जाता है ताकि बच्चा यदि कहीं खो जाये तो कोई भी सज्जन पुरूष उससे सारी जानकारियाँ लेकर उसे उसके घर तक पहुँचा सके। उसी प्रकार यदि जैनकुल में जन्म लेने वाले बच्चों को प्रारम्भ से ही चौबीस भगवान के नाम, उनके चिन्ह, उनकी आयु, उनका जन्मस्थान, जन्मतिथि, निर्वाणस्थान, निर्वाणतिथि, माता-पिता के नाम आदि सिखा दिये जाएँ तो इसमें कोई शक नहीं कि यदि कभी वह इस संसार मार्ग में भटक जाएगा तो इन भगवन्तों के नाम आदि स्मरण कर अपने गन्तव्यस्थल-स्वर्ग, मोक्ष तक आसानी से पहुँच सकता है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इसी उद्देश्य से ''चौबीस तीर्थंकर'' नामक इस पुस्तक में युगादिपुरूष भगवान ऋषभदेव से लेकर अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी तक चौबीसों तीर्थंकरों का संक्षिप्त एवं सारगर्भित जीवन परिचय लेखनीबद्ध किया है। इसे ''सारगर्भित'' इसलिए कहा गया क्योंकि इतने कम शब्दों में प्रत्येक तीर्थंकरों के पंचकल्याणक की तिथियां, पंचकल्याणक स्थान, माता के नाम, वैराग्य का कारण, आदि सारा इतिहास इसमें समाविष्ट है। इसको पढ़ने के बाद तीर्थंकरों के जीवन से संबंधित कोई भी विषय अछूता नहीं रह जाता है।

ये तो हम सभी महसूस करते हैं कि ये तीर्थंकर ही अज्ञान और मिथ्यात्व से आच्छादित एवं हिंसादि पापों से पीड़ित जगत में दर्शन, ज्ञान और चारित्र का आलोक फैलाते हैं, दुःखी जीवों का उद्धार करने में पूर्ण समर्थ होते हैं इसलिए जहाँ भी इनके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और

निर्वाणकल्याणक होते हैं वे सब स्थान भी परम पूज्य तीर्थस्थान हो जाते हैं उन स्थानों के दर्शन-वन्दन से असीम पुण्य का संचय होता है।

भगवान महावीर स्वामी के वर्तमान शासन में पूज्य माताजी ही एक ऐसी महिलारत्न साध्वी हैं जिन्होंने अपनी शुद्ध-प्रासुक लेखनी से 1-2 नहीं, 250 से अधिक ग्रन्थों की रचना की है। उससे भी अधिक विशेष बात यह है कि उनके द्वारा लिखित किसी भी छोटे या बड़े ग्रन्थ में एक भी शब्द आगमविरूद्ध नहीं प्राप्त होता है। इसी श्रृंखला में नई कड़ी के रूप में रची गई इस पुस्तक में वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों की समस्त ज्ञातव्य बातों का प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर बड़े परिश्रम से संग्रह किया गया है क्योंकि पूज्य माताजी की हमेशा एक ही भावना रहती है कि किस प्रकार मैं भव्यप्राणियों को आगम में वर्णित वास्तविक तथ्यों से परिचित करा सकूँ। वर्तमान की ही बात लीजिए आज कुछ आधुनिक विद्वानों द्वारा वैशाली को भगवान महावीर स्वामी की जन्मभूमि बताया जा रहा है जो कि दिगम्बर जैन शास्त्रों से सर्वथा विरूद्ध है। वैशाली तो भगवान महावीर की ननिहाल है और तीर्थंकर के जन्म लेने के 15 महिने पूर्व से जन्म लेने तक कुबेर माता के आंगन में रत्नों की वृष्टि करता है न कि नाना के घर में। अतः सभी को कुण्डलपुर नगरी ही भगवान महावीर की जन्मभूमि मानना चाहिए।

वास्तव में पूज्य माताजी द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य आगमसम्मत एवं अलौकिक होता है। किसी ने ठीक ही कहा है-''प्रत्यक्ष को प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है।'' अर्थात् जब आप इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ेंगे तो आप स्वयं महसूस करेंगे कि इसमें से ऐसी कितनी बातें हैं जो हमने आज तक सुनी ही नहीं थी। जैसे चौबीस तीर्थंकरों के परिचय के साथ ही तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण, वंश, केवलज्ञान उत्पत्ति के स्थान, मुक्तिप्राप्ति के आसन आदि का वर्णन करके पूज्य माताजी ने इस पुस्तक को सर्वोपयोगी बना दिया है।

भगवान महावीर के निर्वाण जाने के बाद राज्यपरम्परा कैसे चलती रही और अब आगे कैसे चलेगी? आने वाला छठा काल कैसे प्रारम्भ होगा? उसका समापन कैसे होगा? यहाँ तक की सारी बातें

लिख देना पूज्य माताजी के असीम परिश्रमपूर्वक अर्जित किये गये ज्ञान का परिचायक है।

पुस्तक के अन्त में ग्यारह अंग, चौदहपूर्व, चारों अनुयोगों का वर्णन तथा चतुर्थकाल में होने वाले 24 तीर्थंकरों के साथ-साथ 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण ऐसे त्रेसठ शलाका पुरूषों का वर्णन है तथा किन तीर्थंकरों के समय में, कितने समय तक धर्म की व्युच्छित्ति हुई यह लिखते हुए पूज्य माताजी ने कुदान-मिथ्या दान की प्रथा कब, कहाँ और किसके द्वारा प्रारभ हुई, इस बारे में बताया है।

अन्त में 2600वें जन्मकल्याणक महोत्सव के शुभअवसर पर चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि पूज्य माताजी चिरायु होकर इसी प्रकार अपने ज्ञानरूपी अमृत से भव्यजीवों को अभिसिंचित करती रहें।

पाठकगण इस पुस्तक के द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करें तथा सभी के चित्त में चौबीस तीर्थंकरों के प्रति असीम श्रद्धा का प्रवाह अनवरत प्रवाहित होता रहे, यही मंगल कामना है।

राष्ट्रगौरव, गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

भारत की वसुन्धरा सदैव से तपस्या, त्याग एवं संयम की भूमि रही है। भगवान ऋषभदेव, राम, महावीर की यह भूमि आज भी ऐसे महान व्यक्तित्वों से सुशोभित है कि जो अपने जीवन में ही ऐतिहासिक बन जाते हैं।

ऐसा ही एक महान व्यक्तित्व है-वर्तमान दिगम्बर जैन समाज की सबसे प्राचीन दीक्षित साध्वी-पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी। सन् 1934 में शरदपूर्णिमा के दिन जिला बाराबंकी (उ.प्र.) के टिकैतनगर ग्राम में माता मोहिनी एवं पिता श्री छोटेलाल जैन के दाम्पत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में कन्यारत्न 'मैना' का जन्म हुआ। छोटी सी आयु से ही अपनी माँ की प्रेरणावश जैन ग्रंथों के स्वाध्याय द्वारा इस बालिका ने अपने वैराग्य को भलीभाँति दृढ़ कर लिया और 18 वर्ष की अल्प आयु में शरदपूर्णिमा के दिन ही परिवार के प्रबल विरोध के बावजूद भी आजन्म ब्रह्मचर्यव्रत एवं गृहत्याग के कठिन नियम धारण कर लिये। सन् 1953 में श्री महावीर जी (राज.) अतिशय क्षेत्र पर आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से आपने क्षुल्लिका दीक्षा लेकर 'वीरमती' नाम प्राप्त किया। पुनः 1956 में बीसवीं सदी के प्रथम आचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज की आज्ञानुसार उनके प्रथम पट्टाधीश शिष्य आचार्यश्री वीरसागर जी महाराज से माधोराजपुरा (राज.) में आपने आर्यिका दीक्षा लेकर 'ज्ञानमती' नाम प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्ति हेतु अध्ययन-अध्यापन एवं स्वाध्याय के प्रति आपकी विशेष अभिरुचि देखकर ही गुरुवर ने आपको यह नाम प्रदान किया था। दीक्षा के प्रारंभिक वर्षों में आपने सर्वप्रथम संस्कृत व्याकरण एवं जैन आगम का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया तथा साथ ही सहस्रनाम मंत्रों की रचनापूर्वक अपनी लेखनी का शुभारंभ भी कर दिया।

60 वर्षों से साधनारत इन महान साध्वी ने अब तक 250 से भी अधिक ग्रंथों का सृजन किया है। संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत, कन्नड़ इत्यादि भाषाओं की प्रकाण्ड विदुषी पूज्य माताजी की काव्य प्रतिभा भी अद्वितीय है। जिनेन्द्र भक्ति के रस से भरे हुए न जाने कितने ही पूजन-विधानों की

रचना पूज्य माताजी ने अपनी लेखनी द्वारा की है। सन् 1995 में डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय (फैजाबाद) ने पूज्य माताजी की विराट ज्ञान साधना को देखकर जैन इतिहास में प्रथम बार किसी साध्वी को 'डी.लिट्.' की मानद् उपाधि प्रदान की। पुनः इसके उपरांत 8 अप्रैल 2012 को पूज्य माताजी के 57वें आर्यिका दीक्षा दिवस के अवसर पर तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद में विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह आयोजित करके विश्वविद्यालय द्वारा पूज्य माताजी के करकमलों डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई।

कर्मठता, दृढ़संकल्प, अनुशासन के साथ-साथ वात्सल्य की प्रतिबिम्ब पूज्य माताजी की प्रेरणा से कौरवों-पाण्डवों की राजधानी हस्तिनापुर (मेरठ-उ.प्र.) में जैन भूगोल की अद्वितीय रचना-'जम्बूद्वीप' का निर्माण हुआ है।

प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण भी पूज्य माताजी की सृजनशक्ति का ही सुन्दर प्रतिफल है। इसी प्रकार भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) में नंद्यावर्त महल तीर्थ का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में मात्र 22 माह के अल्प अन्तराल में हुआ है।

2600 वर्ष पूर्व कुण्डलपुर (नालंदा) की जो धरती अहिंसा के अवतार भगवान महावीर के जन्मकल्याणक से महान उत्साह एवं हर्ष को प्राप्त हुई थी वह काल के थपेड़ों से भले ही विस्मृत जैसी हो गयी हो, परन्तु जैन समाज के श्रद्धालुओं का वहाँ जाना हमेशा से जारी रहा और अब पूज्य ज्ञानमती माताजी के महान उपकार स्वरूप यह जन्मभूमि पुनः इस प्रकार जगमगा उठी है कि आने वाला भविष्य सदैव इसकी चमक से प्रभावित रहेगा।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982) एवं भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ (1998) का देशव्यापी प्रवर्तन सम्पन्न हुआ एवं कुण्डलपुर से प्रवर्तित भगवान महावीर ज्योति रथ (2003) का प्रवर्तन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है। इन रथों के द्वारा सम्पूर्ण भारत में अहिंसामयी सिद्धान्तों की व्यापक प्रभावना हुई।

शैक्षणिक क्षेत्र में अनेकानेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ-सेमिनार इत्यादि पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं तथा आज भी हो रहे हैं। पूज्य माताजी के विराट व्यक्तित्व का अभिनंदन

करने के लिए समाज ने उन्हें समय-समय पर युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, गणिनीप्रमुख, युगनायिका, राष्ट्रगौरव, विश्वविभूति, वाग्देवी, भारतभूषण जैसी उपाधियों से सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया है। वर्तमान में महाराष्ट्र प्रान्त के मांगीतुंगी पर्वत पर विश्व की सबसे ऊँची 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से हो रहा है।

24 घंटे में एक बार आहार लेकर, केशलोंच एवं पदविहार जैसी कठिन साधना करते हुए ब्रह्मचर्य एवं चारित्र के तेज को सर्वत्र बिखेरने वाली पूज्य ज्ञानमती माताजी भारतीय संस्कृति की महान धरोहर हैं, जिन्होंने 15 अप्रैल 2006 को अपनी आर्यिका दीक्षा के 50 वर्षों को पूर्ण किया है। 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ और सन् 2009 ''शांतिवर्ष'' के रूप में घोषित हुआ। राष्ट्रपति जी ने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पधारकर पूज्य माताजी का आशीर्वाद प्राप्त किया।

दीर्घकालीन तपस्विनी ऐसी पूज्यनीया माताजी ने सन् 2009 में अपने जीवन के 75 वर्ष पूर्ण किए जिसे सन् 2008 से 2009 तक राष्ट्रीय स्तर पर ''हीरक जयंती महोत्सव वर्ष'' के रूप में मनाया गया।

वास्तव में आज के कलिकाल में भी आध्यात्मिक ज्ञान, चारित्र, साधना एवं मोक्षपथ को साकार करने वाले गुरुओं का जितना अभिनंदन किया जाये, उतना कम है। जो बिना कुछ कहे अपनी मुद्रा द्वारा ही शांति, संयम, सदाचार का उपदेश देते हैं ऐसे साधु इस भारत वसुन्धरा की शान हैं और हम जैसे जो भी प्राणीगण परमसौभाग्य से उनके चरणों में आश्रय प्राप्त कर लेते हैं, वे भी अपने जीवन को सही अर्थों में सार्थक कर लेते हैं।

ऐसे चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के श्रीचरणों में भावभीना कोटिशः नमन है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय

जिस हस्तिनापुर में इस संस्थान द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कलाप चल रहे हैं, प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की पारणा, कौरव-पाण्डव की राजधानी, दर्शन प्रतिज्ञा में प्रसिद्ध मनोवती का इतिहास आदि पौराणिक कथानकों से जुड़ी वह हस्तिनापुर नगरी एक ऐतिहासिक एवं पौराणिक नगरी है। **सन् 1972** में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के नाम से दिल्ली में इस संस्था का जन्म हुआ।

सन् 1974 से हस्तिनापुर में निर्माण कार्य प्रारंभ किया गया और अब तक वहाँ अनेक भव्य रचनाएं, मंदिर, कमरे, फ्लैट, कोठियां, भोजनालय, टंकी आदि बन चुके हैं। निर्माण के अतिरिक्त संस्थान के द्वारा शिक्षा एवं धर्म प्रचार-प्रसार हेतु शिक्षण शिविर, सेमिनार, अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, सम्मेलन आदि के आयोजन भी होते रहते हैं। पूज्य माताजी एवं आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित चारों अनुयोगों एवं धर्मप्रभावना के समाचारों से सहित सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का प्रकाशन **सन् 1974** से बराबर निर्बाध गति से चल रहा है। संस्थान के अंतर्गत ही **सन् 1972** में स्थापित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से **300** से भी अधिक ग्रंथ लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। यहां जम्बूद्वीप पुस्तकालय, णमोकार महामंत्र बैंक, गणिनी ज्ञानमती शोधपीठ आदि के द्वारा धार्मिक शैक्षणिक एवं पारमार्थिक कार्यक्रम चलते रहते हैं। सन् 1975 से प्रारंभ पंचकल्याणकों में अब तक अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं प्रति 5 वर्षों में होने वाले जम्बूद्वीप महामहोत्सव में से 4 महोत्सव हो चुके हैं। इस संस्थान द्वारा जहाँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् 1982 में दिल्ली से स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा उद्घाटित जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति रथ का 1045 दिनों तक सम्पूर्ण भारत में भ्रमण एवं हस्तिनापुर में उसकी अखण्ड स्थापना हुई, सन् 1998 में प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार द्वारा अहिंसामयी सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार हुआ।

वहीं भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) से महामहिम राज्यपाल बिहार प्रान्त द्वारा प्रवर्तित **''भगवान महावीर ज्योति''** रथ के भारत भ्रमण से जनमानस भगवान महावीर के विषय में आगमसम्मत ज्ञान से परिचित हुआ है। जम्बूद्वीप स्थल पर समय-समय पर भव्य दीक्षाएं भी सम्पन्न हुई हैं। इसी संस्थान द्वारा दिल्ली के लालकिला मैदान में 4 फरवरी सन् 2000 को प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी द्वारा उद्घाटित ''भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव'' सम्पूर्ण देश एवं विदेशों में मनाया गया। जिसके अंतर्गत अनेक संगोष्ठियाँ, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ निर्माण आदि कार्यक्रम हुए। सन् 2000-2001 में संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान भूमि प्रयाग-इलाहाबाद में बनारस हाइवे पर **''तीर्थंकर ऋषभदेव दीक्षातीर्थ''** का नवनिर्माण हुआ है तथा 6 अप्रैल सन् 2001 को ही प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित राष्ट्रीय स्तर पर सम्पूर्ण भारतवर्ष में मनाए जाने वाले भगवान महावीर 2600वाँ जन्मकल्याणक महोत्सव वर्ष में पूज्य माताजी द्वारा रचित ''विश्वशांति महावीर विधान'' का विराट आयोजन प्रथम राष्ट्रीय आयोजन के रूप में राजधानी दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मैदान में अक्टूबर 2001 में सम्पन्न हुआ। उसी जन्मकल्याणक महोत्सव के अंतर्गत सन् 2003-2004 में संस्थान द्वारा पूज्य माताजी की प्रेरणा से भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर का विकास कार्य द्रुतगति से हुआ है। ''नंद्यावर्त महल'' नामक तीर्थ परिसर वहाँ का विशेष दर्शनीय स्थल पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है।

कुण्डलपुर विकास संपन्न होने के पहले ही पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने आगामी वर्ष 2005 को ''भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव वर्ष'' के रूप में मनाने का सारे देश को आह्वान किया और प्रेरणा दी। तदुपरांत पूज्य माताजी ससंघ ने कुण्डलपुर से 14 नवम्बर 2004 को भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि बनारस के लिए विहार किया और पूज्य माताजी के सानिध्य

में बनारस में भगवान पार्श्वनाथ की जन्मजयंती 6 जनवरी 2005 को इस पार्श्वनाथ महोत्सव वर्ष का जोर-शोर के साथ सारे देश की जनता के बीच उत्तरप्रदेश के लोक निर्माण मंत्री-श्री शिवपाल सिंह यादव एवं अन्य अतिथियों द्वारा उद्घाटन किया गया। इस महोत्सव वर्ष के अंतर्गत सर्वप्रथम लम्बे समय से प्रतीक्षित भगवान श्रेयांसनाथ की जन्मभूमि सिंहपुरी-सारनाथ में उनकी विशाल प्रतिमा का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ। तदुपरांत टिकैतनगर में भगवान महावीर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में पधारे उत्तरप्रदेश के लोकप्रिय मुख्यमंत्री माननीय श्री मुलायम सिंह यादव ने भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा के समक्ष दीप प्रज्ज्वलित कर 'पार्श्वनाथ वर्ष' का शुभारंभ किया और भगवान पार्श्वनाथ की वह प्रतिमा ''पार्श्वनाथ दि. जैन इण्टर कालेज'' के परिसर में स्थापित की गई है। इसी शृंखला में सारे देश में 3 वर्ष तक भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव विविध आयोजनों के साथ मनाया गया, जिसका समापन भगवान पार्श्वनाथ की केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तिखाल वाले बाबा के महामस्तकाभिषेकपूर्वक 4 जनवरी 2008 को हुआ।

21 दिसम्बर 2008 का दिवस संस्थान के लिए विशेष गौरवपूर्ण एवं ऐतिहासिक रहा, जब गणतंत्र भारत की महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का शुभाशीर्वाद लेने जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पधारीं और विश्वशाति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया।

इस प्रकार आप सबके सहयोग से संचालित हो रहा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान अपनी चतुर्मुखी योजनाओं से समाज को सदैव लाभान्वित करता रहे यही मंगल कामना है।

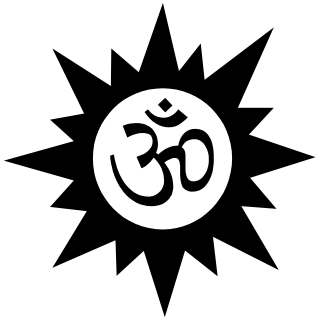

चौबीस तीर्थंकर

यत्पृष्टमादितस्तेन तत्सर्वमनुपूर्वशः। वाचस्पतिरनायासाद् भरतं प्रत्यबूबुधत् ।।१६०।।
प्रागेवोत्सर्पिणीकाल-संबंधी पुरुषाश्रयम्। पुराणमतिगंभीरं व्याजहार जगद्गुरुः ।।१६१।।
ततोऽवसर्पिणीकालमाश्रित्य प्रस्तुतां कथां। प्रस्तोष्यन् स पुराणस्य पीठिकां प्राक्समादधे।।१६२।।
इतिवृत्तं पुराकल्पे यत्प्रोवाच गिरांपतिः। गणी वृषभसेनाख्यस्तत्तदाधिजगेऽर्थतः।।१६३।।
ततः स्वायंभुवीं वाणीमवधार्यार्थतः कृती। जगद्धिताय सोऽग्रन्थीत्तत्पुराणं गणाग्रणीः।।१६४।।
शेषैरपि तथा तीर्थकृद्भिर्गणधरैरपि । महर्द्धिभिर्यथाम्नायं तत्पुराणं प्रकाशितम् ।।१६५।।
ततो युगान्ते भगवान् वीरः सिद्धार्थनन्दनः। विपुलाद्रिमलंकुर्वन्नेकदास्ताखिलार्थदृक् ।।१६६।।
अथोपसृत्य तत्रैनं पश्चिमं तीर्थनायकम् । पप्रच्छामुं पुराणार्थं श्रेणिको विनयानतः ।।१६७।।
तं प्रत्यनुग्रहं भर्तुरवबुध्य गणाधिपः। पुराणसंग्रहं कृत्स्नमन्ववोचत् स गौतमः[1] ।।१६८।।

महापुराण में लिखा है कि एक समय कैलाशपर्वत पर समवसरण में विराजमान भगवान ऋषभदेव के चरणों की वंदना करके महाराज भरत ने त्रेषठ शलाका महापुरुषों के पुराण को सुनने की जिज्ञासा व्यक्त की थी। उनके प्रश्न के अनुसार जगत्गुरु

१. (आदिपुराण प्रथमपर्व)

भगवान ऋषभदेव ने सबसे पहले उत्सर्पिणीकाल संबंधी त्रेसठ शलाका पुरुषों का चरित्र निरूपण करने वाले अत्यंत गंभीर पुराण का निरूपण किया, फिर अवसर्पिणी काल का आश्रय कर तत्संबंधी त्रेसठ शलाका पुरुषों की कथा कहने की इच्छा से पीठिका सहित उनके पुराण का वर्णन किया था।

भगवान ऋषभदेव ने तृतीयकाल के अंत में जो पूर्वकालीन इतिहास कहा था, वृषभसेन गणधरदेव ने उसे अर्थरूप से अध्ययन किया। तदनंतर गणधरों में प्रधान वृषभसेन गणधर ने भगवान की वाणी को अर्थरूप से हृदय में धारण कर जगत् के लिये उसकी पुराणरूप से रचना की। वही पुराण अजितनाथ आदि शेष तीर्थंकरों, गणधरों तथा बड़े-बड़े ऋषियों द्वारा प्रकाशित किया गया।

तदनंतर चतुर्थकाल के अंत में एक समय सिद्धार्थ राजा के पुत्र सर्वज्ञ महावीर स्वामी विहार करते हुये राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर आकर विराजमान हुये। इसके बाद पता चलने पर राजगृही के अधिपति विनयवान श्रेणिक महाराज ने जाकर उन अंतिम तीर्थंकर भगवान से उस पुराण को पूछा। महाराण श्रेणिक के प्रति महावीर स्वामी के अनुग्रह का विचार कर गौतम गणधर ने उस समस्त पुराण का वर्णन किया।

गौतमस्वामी चिरकाल तक उसका स्मरण चिंतवन करते रहे बाद में उन्होंने उसे सुधर्माचार्य से कहा और सुधर्माचार्य ने जंबूस्वामी से कहा। उसी समय से लेकर आज तक यह पुराण बीच में नष्ट नहीं होने वाली गुरुपरम्परा के क्रम से चला आ रहा है। इसी पुराण को मैं इस समय शक्ति के अनुसार प्रकाशित करूंगा। इस कथन से यह सिद्ध होता है कि पुराण के मूलकर्ता अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर हैं और निकटक्रम की अपेक्षा उत्तरग्रन्थकर्ता गौतम गणधर हैं। महाराज श्रेणिक के प्रश्न को उद्देश्य करके गौतम स्वामी ने जो उत्तर दिया था उसी का विचार कर मैं इस पुराण ग्रन्थ की रचना करता हूँ। महापुराण में

श्रीजिनसेनाचार्य ने ऐसा कथन किया है।

यह पुराण—चौबीस तीर्थंकरों का जीवन चरित्र अथवा त्रेसठ शलाका पुरुषों का जीवनचरित्र पुण्य को बढ़ाने वाला है, पवित्र है, उत्तम मंगलरूप है, आयु बढ़ाने वाला है, श्रेष्ठ है, यश बढ़ाने वाला है और स्वर्गप्रदान करने वाला है जो मनुष्य इस पुराण की पूजा करते हैं उन्हें शांति की प्राप्ति होती है, उनके सर्वविघ्न दूर हो जाते हैं। जो इसके विषय में जो कुछ पूछते हैं उन्हें संतोष और पुष्टि की प्राप्ति होती है और जो सुनते हैं उनके कर्मों की निर्जरा होती है। इस पुराण के सुनने से दुःख देने वाले खोटे स्वप्न नष्ट हो जाते हैं तथा सुख देने वाले अच्छे-अच्छे स्वप्न दिखते हैं, इससे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

महापुराण (आदिपुराण) में कहा है-

बुद्धिमान श्रेणिकमहाराज ने गणधरदेव श्रीगौतमस्वामी से पूछा—हे भगवन! श्रीवर्द्धमानस्वामी के मुख से यह संपूर्ण पुराण मैंने अर्थरूप से सुना है अब आपके अनुग्रह से उसे ग्रन्थरूप से सुनना चाहता हूँ।

तब श्रीगौतमस्वामी कहते हैं—

हे श्रेणिक! यह धर्म एक वृक्ष है, अर्थ उसका फल है और काम उसके फलों का रस है। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को त्रिवर्ग कहते हैं, इस त्रिवर्ग की प्राप्ति का मूल कारण धर्म का सुनना है। हे आयुष्मन्! यह धर्म नरक निगोद आदि के दुःखों से जीव की रक्षा करता है और अविनाशी सुख से युक्त मोक्ष स्थान में पहुंचा देता है इसीलिये इसे धर्म कहते हैं।

जो पुराण का अर्थ है वही धर्म है। मुनिजन पुराण को पांच प्रकार का मानते हैं—क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष और उनकी चेष्टायें। ऊर्ध्व, मध्य और पातालरूप तीन लोकों की जो रचना है उसे क्षेत्र

कहते हैं। भूत, भविष्यत् और वर्तमानरूप तीन कालों का जो विस्तार है उसे काल कहते हैं। मोक्षप्राप्ति के लिये उपायभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को तीर्थ कहते हैं। इस तीर्थ को सेवन करने वाले शलाकापुरुष सत्पुरुष कहलाते हैं और पापों के नष्ट करने वाले उन सत्पुरुषों के न्यायोपेत आचरण को उनकी चेष्टायें अथवा क्रियायें कहते हैं।

हे श्रेणिक! तुमने पुराण के इस संपूर्ण अर्थ को अपने प्रश्न में समाविष्ट कर लिया है।

हे बुद्धिमान् श्रेणिक! युग की आदि में भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभदेव से यही प्रश्न पूछा था और यही प्रश्न चक्रवर्ती सगर ने भगवान अजितनाथ से पूछा था। आज तुमने भी अत्यन्त बुद्धिमान गौतम गणधर से यही प्रश्न पूछा है। इस प्रकार समवसरण में स्थित महामुनियों ने भी राजा श्रेणिक की प्रशंसा की।

अनंतर अनेक मुनिगणों द्वारा श्रीगौतम स्वामी के स्तुति करने के पश्चात् श्रीगौतम स्वामी ने कहना शुरू किया। वे उस समय बहुत ही शांतमुद्रा से बैठे थे। उनका बायां हाथ अपने पर्यंक–गोद में था और दाहिना हाथ उपदेश देने के लिये कुछ ऊपर को उठा हुआ था। वे बोले-

श्रुतं मया श्रुतस्कंधादायुष्मन्तो महाधियः।
निबोधत पुराणं मे यथावत् कथयामि वः।।९६।।

हे आयुष्मन्तों भव्यात्माओं! मैंने श्रुतस्कंध से जैसा कुछ इस पुराण को सुना है सो ज्यों का त्यों आप लोगों के लिये कहता हूँ। आप लोग ध्यान से सुनें।

१.श्रेणिकः परिपप्रच्छ गौतमं गणभृत्प्रभुम्।।२।। आदि पु. पर्व २
भगवन्नर्थतः कृत्स्नं श्रुतं स्वायंभुवान्मुखात्। ग्रन्थतः श्रोतुमिच्छामि पुराणं त्वदनुग्रहात् ।।३।।
स च धर्मः पुराणार्थः पुराणं पंचधा विदुः। क्षेत्रं कालश्च तीर्थं च सत्पुंसस्तद्विचेष्टितम् ।।३८।।
क्षेत्रं त्रैलोक्यविन्यासः, कालस्त्रैकाल्यविस्तरः। मुक्त्युपायो भवेत्तीर्थं पुरुषास्तन्निषेविणः।।३९।।
न्याय्यमाचरितं तेषां चरितं दुरितच्छिदाम्। इति कृत्स्नः पुराणार्थः प्रश्ने संभावितस्त्वया।।४०।।

महाधिकाराश्चत्वारः श्रुतस्कंधस्य वर्णिताः। तेषामाद्योऽनुयोगोऽ सतां सच्चरिताश्रयः।।९८।।
द्वितीयः करणादिः स्यादनुयोगः स यत्र वै। त्रैलोक्यक्षेत्रसंख्यानं कुलपत्रेऽधिरोपितम।।९९।।
चरणादिस्तृतीयः स्यादनुयोगो जिनोदितः। यत्र चर्याविधानस्य परा शुद्धिरुदाहृता।।१००।।
तुर्यो द्रव्यानुयोगस्तु द्रव्याणां यत्र निर्णयः। प्रमाणनयनिक्षेपैः सदाद्यैश्च किमादिभिः।।[1]१०१।।

श्रुतस्कंध के चार महा अधिकार वर्णित किये गये हैं उनके पहले अनुयोग का नाम प्रथमानुयोग है। प्रथमानुयोग में तीर्थंकर आदि सत्पुरुषों के चरित्र का वर्णन होता है। दूसरे महाधिकार का नाम करणानुयोग है, इसमें तीनों लोकों का वर्णन उस प्रकार लिखा होता है जिस प्रकार किसी ताम्रपत्र पर किसी की वंशावली लिखी होती है। जिनेंद्रदेव ने तीसरे महाधिकार को चरणानुयोग बतलाया है इसमें मुनि और श्रावकों के चारित्र की शुद्धि का निरूपण होता है। चौथा महाधिकार द्रव्यानुयोग है इसमें प्रमाण, नय, निक्षेप तथा सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व एवं निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान आदि के द्वारा द्रव्यों का निर्णय किया जाता है।

किन्हीं आचार्यों का कहना है कि तीर्थंकरो के पुराणों में चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण इन शलाकापुरुषों के पुराणों का भी संग्रह हो जाता है इसलिये चौबीस ही पुराण समझना चाहिये जोकि चौबीसों तीर्थंकरों के पृथक्-पृथक् नाम से होते हैं। इस प्रकार चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस पुराण हैं इनका जो समूह है वह 'महापुराण' कहलाता है।[2] इस महापुराण ग्रन्थ के आधार से अर्थात् वर्तमान में प्रकाशित 'आदि—पुराण' और 'उत्तर पुराण' के आधार से मैंने यह 'चौबीस तीर्थंकर' नाम से ग्रन्थ लिखा है। यह संक्षेप में होते हुये भी महापुराण का सार है।

१. आदिपुराण पर्व २ । २.पुराणान्येवमेतानि चतुर्विंशतिरर्हताम्। महापुराणमेतेषां समूहः परिभाष्यते ।।१३४।। (आदि पु. पर्व २)

१. तीर्थंकर ऋषभदेव

इसी जम्बूद्वीप में मेरु पर्वत से पश्चिम की ओर विदेह क्षेत्र में एक 'गंधिल' नाम का देश है। जो कि स्वर्ग के समान शोभायमान है। उस देश में हमेशा श्री जिनेन्द्ररूपी सूर्य उदय रहता है। इसीलिये वहाँ मिथ्यादृष्टियों का उद्भव कभी नहीं होता। इस देश के मध्य भाग में रजतमय एक विजयार्ध नाम का बड़ा भारी पर्वत है। उस विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में एक अलका नाम की श्रेष्ठ पुरी है। उस अलकापुरी का राजा अतिबल नाम का विद्याधर था, जिसकी मनोहरा नाम की पतिव्रता रानी थी। उन दोनों के अतिशय भाग्यशाली 'महाबल' नामका पुत्र उत्पन्न हुआ।

किसी समय भोगों से विरक्त हुए महाराज अतिबल ने राज्याभिषेकपूर्वक अपना समस्त राज्य महाबल पुत्र को सौंप दिया और आप अनेक विद्याधरों के साथ वन में जाकर दीक्षा ले ली। महाबल राजा के स्वयंबुद्ध, महामति, संभिन्नमति और शतमति नाम के चार मंत्री थे जो महाबुद्धिमान, स्नेही और दीर्घदर्शी थे। इनमें स्वयंबुद्ध सम्यग्दृष्टि था एवं शेष तीनों मिथ्यादृष्टि थे। किसी समय अपने जन्मगांठ के उत्सव में राजा महाबल सिंहासन पर विराजमान थे। उस समय अनेकों उत्सव, नृत्य, गान और विद्वद्गोष्ठियाँ हो रही थीं। अवसर पाकर स्वयंबुद्ध मंत्री ने स्वामी के हित की इच्छा से जैन धर्म का मार्मिक उपदेश दिया। उसके वचनों को सुनने के लिये असमर्थ भूतवादी महामति मंत्री ने चार्वाक मत को सिद्ध करते हुए जीव तत्त्व का अभाव सिद्ध कर दिया। बौद्धमतानुयायी संभिन्नमति मंत्री ने विज्ञानवाद का आश्रय लेकर जीव का अभाव करना चाहा, उसने कहा—ज्ञान ही मात्र तत्त्व है और सब भ्रममात्र है। इसके बाद शतमति मंत्री ने शून्यवाद का अवलम्बन लेकर सकल जगत् को शून्यमात्र सिद्ध कर दिया।

इन तीनों की बातें सुनकर स्वयंबुद्ध मंत्री ने तीनों के एकान्त दुराग्रह को न्याय और आगम के द्वारा खण्डन करके सच्चे स्याद्वादमय

अहिंसा धर्म की सिद्धि करके उन्हें निरुत्तर कर दिया और राजा को प्रसन्न कर लिया। इसके बाद किसी एक दिन स्वयंबुद्ध मंत्री अकृत्रिम चैत्यालय की वन्दना के लिये सुमेरु पर्वत पर गया, वहाँ पहुंच कर उसने पहले प्रदक्षिणा दी फिर भक्तिपूर्वक बार-बार नमस्कार किया और पूजा की। यथाक्रम से भद्रसाल आदि वन की समस्त अकृत्रिम प्रतिमाओं की वन्दना की और सौमनस वन के चैत्यालय में बैठ गया। इतने में ही विदेह क्षेत्र से आये हुए, आकाश में चलने वाले आदित्यगति और अरिंजय नाम के दो चारण मुनि अकस्मात् देखे, वे दोनों ही मुनि 'युगंधर' भगवान के समवसरणरूपी सरोवर के मुख्य हंस थे। मंत्री ने उठकर उन्हें प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम करके पूजा और स्तुति की अनन्तर प्रश्न किया—हे स्वामिन्! विद्याधर का राजा महाबल हमारा स्वामी है। वह भव्य है या अभव्य? मेरे द्वारा सन्मार्ग भी ग्रहण करेगा या नहीं? इस प्रश्न के बाद आदित्यगति नामक अवधिज्ञानी मुनि कहने लगे हे भव्य! तुम्हारा स्वामी भव्य ही है। वह तुम्हारे वचनों पर विश्वास करेगा और आज से दसवें भव में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर होगा। इसके पूर्वभव को तुम सुनो—

जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत से पश्चिम की ओर विदेह क्षेत्र में 'गंधिला' देश में सिंहपुर नगर है वहां के श्रीषेण राजा की सुन्दरी रानी से जयवर्मा और श्रीवर्मा ऐसे दो पुत्र हुए थे। पिता ने योग्यता और स्नेह के निमित्त से छोटे पुत्र श्रीवर्मा को राज्य दे दिया। तब जयवर्मा विरक्त होकर स्वयंप्रभु गुरु से दीक्षा लेकर तपश्चरण करने लगा और किसी समय आकाश मार्ग में जाते हुए महीधर विद्याधर होने का निदान कर लिया। इतने में ही सर्प के डसने से मरकर तुम्हारा स्वामी महाबल हुआ है। आज रात्रि में उसने दो स्वप्न देखे हैं। तुम जाकर उनका फल कहकर उसके पूर्व भव सुनाओ। उसका कल्याण होने वाला है।

गुरु के वचन से मंत्री वहां आकर बोले—राजन्। आपने जो स्वप्न देखा है कि तीनों मंत्रियों ने कीचड़ में डाल दिया और मैंने

उठाकर सिंहासन पर बैठाया सो यह मिथ्यात्व के कुफल से आप निकलकर जिनधर्म में आ गये हैं। दूसरे स्वप्न में जो आपने अग्नि की ज्वाला क्षीण होते देखी उसका फल आपकी आयु एक माह की शेष रही है। आप दसवें भव में तीर्थंकर होंगे इत्यादि। सारी बातें मंत्री ने सुना दी। राजा महाबल ने भी अपने पुत्र अतिबल को राज्यभार सौंपकर सिद्धकूट चैत्यालय में जाकर सिद्ध प्रतिमाओं की पूजा करके गुरु की साक्षीपूर्वक जीवनपर्यन्त के लिये चतुराहार त्याग कर सल्लेखना धारण कर ली और धर्मध्यानपूर्वक मरण करके ऐशान स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में ललितांग नाम का उत्तम देव हो गया। जब उसकी आयु पृथक्त्व पल्य के बराबर रह गयी तब उसे स्वयंप्रभा नाम की एक और देवी प्राप्त हुई। अन्य देवियों की अपेक्षा ललितांग देव को यह देवी विशेष प्यारी थी। जब उस देव की माला आदि मुरझाई तब मृत्यु निकट जानकर शोक करते हुए इसको अनेकों देवों ने सम्बोधन किया जिसके फलस्वरूप इस देव ने पन्द्रह दिन तक जिन चैत्यालयों की पूजा की और अच्युत स्वर्ग की जिन प्रतिमाओं की पूजा करके वहीं पर चैत्यवृक्ष के नीचे बैठकर उच्चस्वर से महामंत्र का उच्चारण करते हुए सल्लेखना से मरण को प्राप्त हो गया।

जम्बूद्वीप के महामेरु से पूर्व की ओर विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश है उसके उत्पलखेटक नगर के राजा वज्रबाहु और रानी वसुंधरा से वह ललितांग देव 'वज्रजंघ' ना मक पुत्र उत्पन्न हुआ। उधर अपने पति के अभाव में वह पतिव्रता स्वयंप्रभा छह महीने तक बराबर जिनपूजा में तत्पर रही। पश्चात् सौमनस वन सम्बन्धी पूर्व दिशा के जिन मन्दिर में चैत्यवृक्ष के नीचे पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हुए समाधिपूर्वक प्राण त्याग दिये और विदेह क्षेत्र की पुंडरीकिणी नगरी के राजा वज्रदन्त की महारानी लक्ष्मीमती से 'श्रीमती' नाम की कन्या उत्पन्न हो गयी। कालान्तर में निमित्तवश इस वज्रजंघ और श्रीमती का विवाह हो गया। इनके उनचास युगल पुत्र उत्पन्न हुए अर्थात् अट्ठानवे पुत्र उत्पन्न हुए। किसी समय वे अपने बाबा के साथ दीक्षित हो गए।

किसी समय श्रीमती के पिता चक्रवर्ती वज्रदन्त ने छोटे से पोते पुंडरीक का राज्याभिषेक कर दिया और विरक्त होकर दीक्षा ले ली। उस समय लक्ष्मीमती माता ने अपनी पुत्री और जमाई को बुलाया। ये दोनों वैभव के साथ पुंडरीकिणी नगरी की ओर आ रहे थे। मार्ग में किसी वन में ही पड़ाव डाला। वहाँ पर आकाश में गमन करने वाले श्रीमान् दमधर और सागरसेन मुनि युगल वज्रजंघ के पड़ाव में पधारे। उन दोनों ने वन में आहार लेने की प्रतिज्ञा ली थी। वहां वज्रजंघ ने श्रीमती के साथ नवधाभक्ति सहित विधिवत् आहार दान दिया और पंचाश्चर्य को प्राप्त हुए। अनन्तर उन्हें कंचुकी से विदित हुआ कि ये दोनों मुनि हमारे ही अंतिम पुत्र युगल हैं। राजा वज्रजंघ और श्रीमती ने उनसे अपने पूर्वभव सुने और धर्म के मर्म को समझा। अनन्तर पास में बैठे हुए नकुल, सिंह, वानर और सूकर के पूर्व भव सुने। उन मुनियों ने यह भी बताया कि आप आठवें भव में ऋषभदेव तीर्थंकर होवोगे और श्रीमती का जीव राजा श्रेयांसकुमार होंगे।

किसी समय वज्रजंघ महाराज रानी सहित अपने शयनागार में सोये हुए थे उसमें नौकरों ने कृष्णागरू आदि से निर्मित धूप खेई थी और वे नौकर रात में खिड़कियाँ खोलना भूल गये, जिसके निमित्त धुएँ से कण्ठ रुँधकर वे पति पत्नी दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। आश्चर्य है कि भोग सामग्री प्राणघातक बन गयी! .वे दोनों दान के प्रभाव से मरकर उत्तरकुरु नामक उत्तम भोगभूमि में भोगभूमिया हो गये। वे नकुल आदि भी दान की अनुमोदना से भोग भूमि को प्राप्त हो गये।

किसी समय दो चारण मुनि आकाश मार्ग से वहाँ भोगभूमि में उतरे और इन वज्रजंघ आर्य और श्रीमती आर्या को सम्यग्दर्शन का उपदेश देने लगे। ज्येष्ठ मुनि बोले, हे आर्य! तुम मुझे स्वयंबुद्ध मंत्री का जीव समझो। मैंने तुम्हें महाबल पर्याय में जैन धर्म ग्रहण कराया था। उन दोनों दम्पत्तियों ने मुनियों के प्रसाद से सम्यग्दर्शन ग्रहण किया और आयु के अन्त में च्युत होकर ईशान स्वर्ग में 'श्रीधर' देव

और स्वयंप्रभ नाम के देव हुए। अर्थात् श्रीमती का जीव सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्री पर्याय छोड़कर देव पद को प्राप्त हो गया। एक दिन श्रीधर देव ने अपने गुरु (स्वयंबुद्ध मंत्री के जीव) प्रीतिंकर मुनिराज के समवसरण में जाकर पूछा—भगवन्! मेरे महाबल के भव में जो तीन मंत्री थे वे इस समय कहाँ हैं? भगवान ने बताया कि उन तीनों में से महामति और सम्भिन्नमति ये दो तो निगोद स्थान को प्राप्त हुए हैं और शतमति नरक गया है। तब श्रीधरदेव ने नरक में जाकर शतमति के जीव को सम्बोधित किया था तथा निगोद के जीवों को सम्बोधन का सवाल ही नहीं है।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में महावत्स देश है उसकी सुसीमा नगरी के सुदृष्टि राजा की सुन्दरनन्दा रानी से वह श्रीधर देव स्वर्ग से च्युत होकर 'सुविधि' नाम का पुत्र हुआ था। कालांतर में सुविधि की रानी मनोरमा से स्वयंप्रभ देव (श्रीमती का जीव) स्वर्ग से च्युत होकर केशव नाम का पुत्र हो गया, मतलब वज्रजंघ का जीव सुविधि राजा हुआ और श्रीमती का जीव उसका पुत्र हुआ है।

कदाचित् सुविधि महाराज दैगम्बरी दीक्षा लेकर अन्त में मरकर अच्युतेन्द्र हुए और केशव ने भी निर्ग्रन्थ दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र पद प्राप्त किया।

वह अच्युतेन्द्र, जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह में पुष्कलावती देश की पुंडरीकिणी नगरी में वज्रसेन राजा और श्रीकान्ता रानी से वज्रनाभि नाम का चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रीमती का जीव केशव जो अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुआ था वह भी वहां से च्युत होकर इसी नगरी में कुबेरदत्त वणिक की अनन्तमती पत्नी से धनदेव नाम का पुत्र हुआ। वज्रनाभि के पिता तीर्थंकर थे और वह स्वयं चक्रवर्ती था, चक्ररत्न से षट्खंड वसुधा को जीतकर चिरकाल तक साम्राज्य सुख का अनुभव किया। किसी समय पिता से दुर्लभ रत्नत्रय के स्वरूप को समझकर अपने पुत्र वज्रदन्त को राज्य समर्पण कर सोलह हजार मुकुटबद्ध राजाओं, एक हजार पुत्रों, आठ भाइयों और धनदेव के साथ-साथ पिता वज्रसेन तीर्थंकर के समवसरण में जिनदीक्षा धारण

कर ली और किसी समय तीर्थंकर के ही निकट सोलहकारण भावनाओं का चिन्तवन करते हुए तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया। ध्यान की विशुद्धि से ग्यारहवें गुणस्थान में पहुंच गये और वहां का अन्तर्मुहूर्त काल पूर्ण कर नीचे उतरे, पुनरपि कदाचित् उपशम श्रेणी में चढ़ गये और वहां आयु समाप्त होते ही मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गये।

ऋषभदेव का गर्भावतार—

भगवान् के गर्भ में आने के छह महीने पहले इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने माता के आंगन में साढ़े सात करोड़ रत्नों की वर्षा की थी। किसी दिन रात्रि के पिछले प्रहर में रानी मरुदेवी ने ऐरावत हाथी, शुभ्र बैल, हाथियों द्वारा स्वर्ण घटों से अभिषिक्त लक्ष्मी, पुष्पमाला आदि सोलह स्वप्न देखे। प्रातः पतिदेव से स्वप्न का फल सुनकर अत्यन्त हर्षित हुईं। उस समय अवसर्पिणी काल के सुषमा दुःषमा नामक तृतीय काल में चौरासी लाख पूर्व तीन वर्ष, आठ मास और एक पक्ष शेष रहने पर आषाढ़ कृष्ण द्वितीया के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वज्रनाभि अहमिन्द्र देवायु का अन्त होने पर सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर मरुदेवी के गर्भ में अवतीर्ण हुए। उस समय इन्द्र ने आकर गर्भकल्याणक महोत्सव मनाया। इन्द्र की आज्ञा से श्री, ह्री आदि देवियाँ और दिक्कुमारियाँ माता की सेवा करते हुए काव्यगोष्ठी, सैद्धान्तिक चर्चाओं से और गूढ़ प्रश्नों से माता का मन अनुरंजित करने लगीं।

ऋषभदेव का जन्म महोत्सव-

नव महीने व्यतीत होने पर माता मरुदेवी ने चैत्र कृष्ण नवमी के दिन सूर्योदय के समय मति-श्रुत-अवधि इन तीनों ज्ञान से सहित भगवान् को जन्म दिया। सारे विश्व में हर्ष की लहर दौड़ गई। इन्द्रों के आसन कम्पित होने से, कल्पवृक्षों से पुष्पवृष्टि होने से एवं चतुर्निकाय देवों के यहां घंटा ध्वनि, शंखनाद आदि बाजों के बजने से भगवान का जन्म हुआ है ऐसा समझकर सौधर्म इन्द्र ने इन्द्राणी सहित ऐरावत हाथी पर चढ़कर नगर की प्रदक्षिणा करके भगवान को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर १००८ कलशों से क्षीरसमुद्र

के जल से भगवान का जन्माभिषेक किया। अनन्तर वस्त्राभरणों से अलंकृत करके 'ऋषभदेव' यह नाम रखा। इन्द्र अयोध्या में वापस आकर स्तुति, पूजा, तांडव नृत्य आदि करके स्वस्थान को चले गये।

ऋषभदेव का विवाहोत्सव-

भगवान् के युवावस्था में प्रवेश करने पर महाराजा नाभिराज ने बड़े ही आदर से भगवान् की स्वीकृति प्राप्त कर इन्द्र की अनुमति से कच्छ, सुकच्छ राजाओं की बहन 'यशस्वती', 'सुनन्दा' के साथ श्री ऋषभदेव का विवाह सम्पन्न कर दिया।

भरत चक्रवर्ती आदि का जन्म—

यशस्वती देवी ने चैत्र कृष्ण नवमी के दिन भरत चक्रवर्ती को जन्म दिया तथा क्रमशः निन्यानवे पुत्र एवं ब्राह्मी कन्या को जन्म दिया। दूसरी सुनन्दा महादेवी ने कामदेव भगवान बाहुबली और सुन्दरी नाम की कन्या को जन्म दिया। इस प्रकार एक सौ तीन पुत्र, पुत्रियों सहित भगवान ऋषभदेव, देवों द्वारा लाये गये भोग पदार्थों का अनुभव करते हुए गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहे थे।

भगवान द्वारा पुत्र-पुत्रियों का विद्याध्ययन—

भगवान ऋषभदेव गर्भ से ही अवधिज्ञानधारी होने से स्वयं गुरु थे। किसी समय भगवान ब्राह्मीसुन्दरी को गोद में लेकर उन्हें आशीर्वाद देकर चित्त में स्थित श्रुतदेवता को सुवर्णपट्ट पर स्थापित कर 'सिद्धं नमः' मंगलाचरणपूर्वक दाहिने हाथ से 'अ, आ' आदि वर्णमाला लिखकर ब्राह्मी कुमारी को लिपि लिखने का एवं बायें हाथ से सुन्दरी को अनुक्रम के द्वारा इकाई, दहाई आदि अंक विद्या को लिखने का उपदेश दिया था। इसी प्रकार भगवान ने अपने भरत, बाहुबली आदि सभी पुत्रों को सभी विद्याओं का अध्ययन कराया था।

असि-मषि आदि षट्क्रियाओं का उपदेश—

काल प्रभाव से कल्पवृक्षों के शक्तिहीन हो जाने पर एवं बिना बोये धान्य के भी विरल हो जाने पर व्याकुल हुई प्रजा नाभिराज के पास गई। अनन्तर नाभिराज की आज्ञा से प्रजा भगवान ऋषभदेव के पास आकर रक्षा की प्रार्थना करने लगी।

प्रजा[1] के दीन वचन सुनकर भगवान ऋषभदेव अपने मन में सोचने लगे कि पूर्व-पश्चिम विदेह में जो स्थिति वर्तमान है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है। उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है। वहां जैसे असि, मषि आदि षट्कर्म हैं, क्षत्रिय आदि वर्ण व्यवस्था, ग्राम-नगर आदि की रचना है वैसे ही यहां भी होना चाहिये। अनन्तर भगवान ने इन्द्र का स्मरण किया और स्मरणमात्र से इन्द्र ने आकर अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना करके चारों दिशाओं में जिनमन्दिर बनाये। कौशल, अंग, बंग आदि देश, नगर बनाकर प्रजा को बसाकर प्रभु की आज्ञा से इन्द्र स्वर्ग को चला गया। भगवान ने प्रजा को असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह कर्मों का उपदेश दिया। उस समय भगवान सरागी थे। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना की और अनेकों पाप रहित आजीविका के उपाय बताये। इसीलिये भगवान युगादिपुरुष, आदिब्रह्मा, विश्वकर्मा, स्रष्टा, कृतयुग विधाता और प्रजापति आदि कहलाये। उस समय इन्द्र ने भगवान का साम्राज्य पद पर अभिषेक कर दिया।

भगवान का वैराग्य और दीक्षा महोत्सव—

किसी समय सभा में नीलांजना के नृत्य को देखते हुए बीच में उसकी आयु के समाप्त होने से भगवान को वैराग्य हो गया। भगवान ने भरत का राज्याभिषेक करते हुए इस पृथ्वी को 'भारत' इस नाम से सनाथ किया और बाहुबली को युवराज पद पर स्थापित किया। भगवान महाराज नाभिराज आदि को पूछकर इन्द्र द्वारा लाई गई 'सुदर्शना' नामक पालकी पर आरूढ़ होकर 'सिद्धार्थक' वन में पहुंचे और वटवृक्ष के नीचे बैठकर 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः मन्त्र का उच्चारण कर पंचमुष्टि केशलोंच करके सर्व परिग्रह रहित मुनि हो गये। उस स्थान की इन्द्रों ने पूजा की थी इसीलिये उसका 'प्रयाग' यह नाम प्रसिद्ध हो गया अथवा भगवान ने वहां प्रकृष्ट रूप से त्याग किया था

१. श्रुत्वेतितद्वचो दीनं करुणाप्रेरिताशयः। मनः प्रणिदधावेवं भगवानादिपुरूषः।।१४२।।
पूर्वापरविदेहेषु या स्थितिः समवस्थिता। सद्यः प्रवर्तनीयात्रा ततो जीवन्त्यमूः प्रजाः।।१४३।।
(आदिपुराण)

इसीलिये भी उसका नाम प्रयाग हो गया था[1]। उसी समय भगवान ने छह महीने का योग ले लिया। भगवान के साथ आये हुए चार हजार राजाओं ने भी भक्तिवश नग्न मुद्रा धारण कर ली।

पाखंड मत की उत्पत्ति—

भगवान के साथ दीक्षित हुए राजा लोग दो-तीन महीने में ही क्षुधा, तृषा आदि से पीड़ित होकर अपने हाथ से वन के फल आदि ग्रहण करने लगे। इस क्रिया को देख वन देवताओं ने कहा कि मूर्खों! यह दिगम्बर वेष सर्वश्रेष्ठ अरहंत, चक्रवर्ती आदि के द्वारा धारण करने योग्य है। तुम लोग इस वेष में अनर्गल प्रवृत्ति मत करो। यह सुनकर उन लोगों ने भ्रष्ट हुये तपस्वियों के अनेकों रूप बना लिये, वल्कल, चीवर, जटा, दण्ड आदि धारण करके वे पारिव्राजक आदि बन गये। भगवान ऋषभदेव का पौत्र मरीचिकुमार इनमें अग्रणी गुरू परिव्राजक बन गया। ये मरीचि कुमार आगे चलकर अंतिम तीर्थंकर महावीर हुए हैं।

भगवान का आहार ग्रहण—

जगद्गुरु भगवान छह महीने बाद आहार को निकले परन्तु चर्याविधि किसी को मालूम न होने से सात माह नौ दिन और व्यतीत हो गये अतः एक वर्ष उनतालीस दिन बाद भगवान कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में पहुंचे। भगवान को आते देख राजा श्रेयांस को पूर्व भव का स्मरण हो जाने से राजा सोमप्रभ के साथ श्रेयांसकुमार ने विधिवत् पड़गाहन आदि करके नवधाभक्ति से भगवान को इक्षुरस का आहार दिया। वह दिन वैशाख शुक्ला तृतीया का था जो आज भी 'अक्षय तृतीया' के नाम से प्रसिद्ध है।

भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति—

हजार वर्ष तपश्चरण करते हुए भगवान को पूर्वतालपुर के उद्यान में—प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे ही फाल्गुन कृष्णा एकादशी के दिन केवलज्ञान प्रकट हो गया। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने बारह योजन प्रमाण समवसरण की रचना की। समवसरण में बारह

१. प्रकृष्टो वा कृतस्त्यागः प्रयागस्तेन कीर्तितः। (पद्मपुराण)

सभाओं में क्रम से १.सप्तऋद्धि समन्वित गणधर देव और मुनिजन २. कल्पवासी देवियाँ ३. आर्यिकायें और श्राविकायें ४. भवनवासी देवियाँ ५. व्यन्तर देवियाँ ६. ज्योतिष्क देवियाँ ७. भवनवासी देव ८. व्यन्तर देव ९. ज्योतिष्क देव १०. कल्पवासी देव ११. मनुष्य और १२. तिर्यंच बैठकर उपदेश सुनते थे। पुरिमताल नगर के राजा श्री ऋषभदेव भगवान के पुत्र ऋषभसेन प्रथम गणधर हुए। ब्राह्मी भी आर्यिका दीक्षा लेकर आर्यिकाओं में प्रधान गणिनी हो गयीं। भगवान के समवसरण में ८४ गणधर, ८४००० मुनि, ३५०००० आर्यिकायें, ३००००० श्रावक, ५००००० श्राविकायें, असंख्यातों देव देवियाँ और संख्यातों तिर्यंच उपदेश सुनते थे।

ऋषभदेव का निर्वाण—

जब भगवान की आयु चौदह दिन शेष रही तब कैलाश पर्वत पर जाकर योगों का निरोध कर माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन सूर्योदय के समय भगवान पूर्व दिशा की ओर मुँह करके अनेक मुनियों के साथ सर्वकर्मों का नाशकर एक समय में सिद्धलोक में जाकर विराजमान हो गये। उसी क्षण इन्द्रों ने आकर भगवान का निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया था, ऐसे ऋषभदेव जिनेन्द्र सदैव हमारी रक्षा करें।

भगवान के मोक्ष जाने के बाद तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष व्यतीत हो जाने पर चतुर्थ काल प्रवेश करता है।

प्रथम तीर्थंकर का तृतीय काल में ही जन्म लेकर मोक्ष भी चले जाना यह हुंडावसर्पिणी के दोष का प्रभाव है।

महापुराण में भगवान ऋषभदेव के 'दशावतार' नाम भी प्रसिद्ध हैं।

१. विद्याधर राजा महाबल २. ललितांग देव ३. राजा वज्रजंघ ४. भोगभूमिज आर्य ५.श्रीधर देव ६. राजा सुविधि ७. अच्युतेन्द्र ८. वज्रनाभि चक्रवर्ती ९. सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र १०. भगवान ऋषभदेव।

इन भगवान को ऋषभदेव, वृषभदेव, आदिनाथ, पुरुदेव और आदिब्रह्मा भी कहते हैं।

२. तीर्थंकर अजितनाथ

इस जम्बूद्वीप के अतिशय प्रसिद्ध पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण तट पर 'वत्स' नाम का विशाल देश है। उसके सुसीमा नामक नगर में विमलवाहन राजा राज्य करते थे। किसी समय राज्य लक्ष्मी से निस्पृह होकर राजा विमलवाहन ने अनेकों राजाओं के साथ गुरु के समीप में दीक्षा धारण कर ली। ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त कर दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन करके तीर्थंकर नामकर्म का बंध कर लिया। आयु के अन्त में समाधिमरण करके विजय नामक अनुत्तर विमान में तेंतीस सागर आयु के धारक अहमिंद्र हो गये।

पंचकल्याणक वैभव—

इन महाभाग के स्वर्ग से पृथ्वी तल पर अवतार लेने के छह माह पूर्व से ही प्रतिदिन जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी के अधिपति इक्ष्वाकुवंशीय काश्यपगोत्रीय राजा जितशत्रु के घर में इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा की थी। ज्येष्ठ मास की अमावस के दिन विजयसेना ने सोलह स्वप्नपूर्वक भगवान को गर्भ में धारण किया और माघ शुक्ल दशमी के दिन अजितनाथ तीर्थंकर को जन्म दिया। देवों ने ऋषभदेव के समान इनके भी गर्भ, जन्म कल्याणक महोत्सव मनाये। अजितनाथ की आयु बहत्तर लाख पूर्व की, शरीर की ऊँचाई चार सौ पचास धनुष की और वर्ण सुवर्ण सदृश था। एक लाख पूर्व कम अपनी आयु के तीन भाग तथा एक पूर्वांग तक उन्होंने राज्य किया। किसी समय भगवान महल की छत पर सुख से विराजमान थे तब उल्कापात देखकर उन्हें वैराग्य हो गया पुनः देवों द्वारा आनीत 'सुप्रभा' पालकी पर आरूढ़ होकर माघ शुक्ल नवमी के दिन सहेतुक वन में सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे एक हजार राजाओं के साथ बेला का नियम लेकर दीक्षित हो गये।

प्रथम पारणा में साकेत नगरी के ब्रह्म राजा ने पायस का आहार देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये।

बारह वर्ष की छद्मस्थ अवस्था के बाद पौष शुक्ल एकादशी के दिन सायं के समय रोहिणी नक्षत्र में सहेतुक वन में सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे केवलज्ञान को प्राप्त कर सर्वज्ञ हो गये। इनके समवसरण में सिंहसेन आदि नब्बे गणधर थे। एक लाख मुनि, प्रकुब्जा आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकायें, तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकायें और असंख्यात देव देवियाँ थीं। भगवान बहुत काल तक आर्य खंड में विहार करके भव्यों को उपदेश देकर अंत में सम्मेदाचल पर पहुँचे और एक मास का योग निरोध कर चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन प्रातःकाल के समय सर्वकर्म से छूटकर सिद्ध पद प्राप्त किया।

३. तीर्थंकर संभवनाथ

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तट पर एक 'कच्छ' नाम का देश है। उसके क्षेमपुर नगर में राजा विमलवाहन राज्य करता था। एक दिन वह किसी कारण से विरक्त होकर स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के पास दीक्षा लेकर ग्यारह अंगों को पढ़कर उन्हीं भगवान के चरण सान्निध्य में सोलह कारण भावनाओं द्वारा तीनों लोकों में क्षोभ उत्पन्न करने वाले तीर्थंकर नामकर्म का बंध कर लिया। संन्यासविधि से मरण कर प्रथम ग्रैवेयक के सुदर्शन विमान में तेतीस सागर आयु वाला अहमिन्द्र देव हो गया।

पंचकल्याणक वैभव—

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की 'श्रावस्ती' नगरी के राजा दृढ़राज इक्ष्वाकुवंशीय, काश्यपगोत्रीय थे। उनकी रानी का नाम सुषेणा था। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी के दिन, मृगशिरानक्षत्र में रानी ने पूर्वोक्त अहमिन्द्र को गर्भ में धारण किया और कार्तिक शुक्ला पौर्णमासी के दिन मृगशिरा नक्षत्र में तीन ज्ञानधारी पुत्र को जन्म दिया। इन्द्र ने पूर्वोक्त विधि से गर्भकल्याणक मनाया था, उस समय जन्मोत्सव करके 'संभवनाथ' यह नाम रखा। इनकी आयु साठ लाख पूर्व की तथा ऊँचाई चार सौ धनुष थी। भगवान को राज्य सुख का अनुभव करते हुए जब चवालीस लाख पूर्व और चार पूर्वांग व्यतीत

हो चुके तब किसी दिन मेघों का विभ्रम देखने से उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हो गया। तब भगवान देवों द्वारा लाई गई 'सिद्धार्थ' पालकी में बैठकर सहेतुक वन में शाल्मली वृक्ष के नीचे जाकर एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। भगवान की प्रथम पारणा का लाभ श्रावस्ती के राजा सुरेन्द्रदत्त ने प्राप्त किया था। संभवनाथ भगवान चौदह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में मौन से तपश्चरण करते हुए दीक्षा वन में शाल्मली वृक्ष के नीचे कार्तिक कृष्ण चतुर्थी के दिन मृगशिर नक्षत्र में अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर केवली हो गये। इनके समवसरण में चारुषेण आदि एक सौ पाँच गणधर थे। दो लाख मुनि, धर्मार्या आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकायें, तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियाँ और संख्यात तिर्यंच थे। अन्त में जब आयु का एक माह अवशिष्ट रहा तब उन्होंने सम्मेदाचल पर जाकर एक हजार राजाओं के साथ प्रतिमायोग धारण किया तथा चैत्रमास के शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन सूर्यास्त के समय मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त किया। देवों द्वारा किये गये पंचकल्याणक महोत्सव को पूर्ववत् समझना चाहिए।

४. तीर्थंकर अभिनन्दननाथ

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेहक्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण तट पर एक मंगलावती देश है उसके रत्नसंचय नगर में महाबल राजा रहता था। किसी दिन विरक्त होकर विमलवाहन गुरु के पास दीक्षा लेकर ग्यारह अंग का पठन करके सोलहकारण भावनाओं का चिन्तवन किया, तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके अन्त में समाधिमरणपूर्वक विजय नाम के अनुत्तर विमान में तेतीस सागर आयु वाला अहमिन्द्र देव हो गया।

पंचकल्याणक वैभव—

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में अयोध्या नगरी के स्वामी इक्ष्वाकुवंशीय काश्यपगोत्रीय 'स्वयंवर' नाम के राजा थे उनकी

'सिद्धार्था' महारानी थी। माता ने वैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन उस अहमिन्द्र को गर्भ में धारण किया और माघ शुक्ला द्वादशी के दिन उत्तम पुत्र को उत्पन्न किया। सौधर्म इन्द्र ने देवों सहित मेरु पर्वत पर जन्म महोत्सव मनाया और भगवान का 'अभिनन्दननाथ' नाम प्रसिद्ध करके वापस माता-पिता को सौंप गये। उनकी आयु पचास लाख पूर्व और ऊँचाई साढ़े तीन सौ धनुष की थी। कुमार काल के साढ़े बारह लाख पूर्व बीत जाने पर राज्य पद को प्राप्त हुए, राज्य काल के साढ़े छत्तीस लाख पूर्व वर्ष व्यतीत हो गये और आठ पूर्वांग शेष रहे तब वे एक दिन आकाश में मेघों का महल नष्ट होता देखकर विरक्त हो गये और देवनिर्मित 'हस्तचित्रा' नामक पालकी पर आरूढ़ होकर माघ शुक्ला द्वादशी के दिन वेला का नियम लेकर एक हजार राजाओं के साथ जिनदीक्षा धारण कर ली उसी समय उन्हें मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया। पारणा के दिन साकेत नगरी के राजा इन्द्रदत्त ने भगवान को क्षीरान्न का आहार कराया और पंचाश्चर्य को प्राप्त किया।

छद्मस्थ अवस्था के अठारह वर्ष बीत जाने पर दीक्षा वन में असन वृक्ष के नीचे बेला का नियम लेकर ध्यानारूढ़ हुए। पौष शुक्ल चतुर्दशी के दिन शाम के समय पुनर्वसु नक्षत्र में उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। इनके समवसरण में वज्रनाभि आदि एक सौ तीन गणधर, तीन लाख मुनि, मेरुषेणा आदि तीन लाख तीस हजार छह सौ आर्यिकायें, तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें, असंख्यातों देव देवियाँ और संख्यातों तिर्यंच बारह सभा में बैठकर धर्मोपदेश श्रवण करते थे।

इन अभिनन्दननाथ भगवान ने अन्त में सम्मेदशिखर पर पहुँचकर एक महीने का प्रतिमायोग लेकर वैशाख शुक्ला षष्ठी के दिन प्रातःकाल के समय अनेक मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया। इन्द्रों के द्वारा किये गये सारे वैभव यहाँ भी समझना चाहिए।

५. तीर्थंकर सुमतिनाथ

धातकी खंड द्वीप में मेरुपर्वत से पूर्व की ओर स्थित विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तट पर पुष्कलावती नाम का देश है। उसकी पुंडरीकिणी नगरी में रतिषेण नाम का राजा था। किसी दिन राजा विरक्त होकर अपना राज्य अतिरथ ने पुत्र को देकर अर्हन्नन्दन जिनेन्द्र के समीप दीक्षा लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और दर्शनविशुद्धि आदि कारणों से तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके वैजयन्त विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

पंचकल्याणक वैभव—

वैजयन्त विमान से च्युत होकर वह अहमिन्द्र इसी भरत क्षेत्र के अयोध्यापति मेघरथ की रानी मंगलावती के गर्भ में आया वह दिन श्रावण शुक्ल द्वितीया का था। तदनन्तर चैत्र माह की शुक्ला एकादशी के दिन माता ने सुमतिनाथ तीर्थंकर को जन्म दिया। वैशाख सुदी नवमी के दिन प्रातःकाल सहेतुक वन में एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा धारण कर ली। छद्मस्थ अवस्था में बीस वर्ष बिताकर सहेतुक वन में प्रियंगु वृक्ष के नीचे चैत्र शुक्ल एकादशी के दिन केवलज्ञान को प्राप्त किया। इनकी सभा में एक सौ सोलह गणधर, तीन लाख बीस हजार मुनि, अनन्तमती आदि तीन लाख तीस हजार आर्यिकायें, तीन लाख श्रावक और पाँच लाख श्राविकायें थीं। अन्त में भगवान ने सम्मेदाचल पर पहुँचकर एक माह तक प्रतिमायोग से स्थित होकर चैत्र शुक्ला एकादशी के दिन मघा नक्षत्र में शाम के समय निर्वाण प्राप्त किया। सारे पंचकल्याणक महोत्सव आदि पूर्ववत् समझना ।

६. तीर्थंकर पद्मप्रभदेव

धातकीखंड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीतानदी के दक्षिण तट पर वत्सदेश है। उसके सुसीमा नगर के अधिपति अपराजित थे। किसी दिन भोगों से विरक्त होकर पिहितास्रव जिनेन्द्र के पास दीक्षा धारण कर ली, ग्यारह अंगों का अध्ययन कर तीर्थंकर प्रकृति का

बंध किया। अन्त में ऊर्ध्व ग्रैवेयक के प्रीतिंकर विमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

पंचकल्याणक वैभव—

इसी जम्बूद्वीप की कौशाम्बी नगरी में धरण महाराज की सुसीमा रानी ने माघ कृष्ण षष्ठी के दिन उक्त अहमिन्द्र को गर्भ में धारण किया। कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के दिन पुत्ररत्न को उत्पन्न किया। इन्द्रों ने जन्मोत्सव के बाद उनका नाम 'पद्मप्रभ' रखा। किसी समय दरवाजे पर बंधे हुए हाथी की दशा सुनने से उन्हें अपने पूर्व भवों का ज्ञान हो गया जिससे भगवान को वैराग्य हो गया। वे देवों द्वारा लाई गई 'निवृत्ति' नाम की पालकी पर बैठ मनोहर नाम के वन में गये और कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी के दिन दीक्षा ले ली। छह मास छद्मस्थ अवस्था के व्यतीत हो जाने पर चैत्र शुक्ला पूर्णिमा के दिन मध्याह्न में केवलज्ञान प्रकट हो गया। बहुत काल तक भव्यों को धर्मोपदेश देकर फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी के दिन सम्मेदाचल से मोक्ष को प्राप्त कर लिया।

७. तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ

धातकीखंड के पूर्व विदेह में सीतानदी के उत्तर तट पर सुकच्छ नाम का देश है, उसके क्षेमपुर नगर में नन्दिषेण राजा राज्य करता था। कदाचित् भोगों से विरक्त होकर नन्दिषेण राजा ने अर्हन्नन्दन गुरु के पास दीक्षा लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन कर दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया। सन्यास से मरण कर मध्यम ग्रैवेयक के सुभद्र नामक मध्यम विमान में अहमिन्द्र हो गये।

पंचकल्याणक वैभव—

इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष सम्बन्धी काशीदेश में बनारस नाम की नगरी थी उसमें सुप्रतिष्ठित महाराज राज्य करते थे। उनकी पृथ्वीषेणा रानी के गर्भ में भगवान भाद्रपद शुक्ल षष्ठी के दिन आ गये। अनन्तर ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन उस अहमिन्द्र पुत्र को

उत्पन्न किया। इन्द्र ने जन्मोत्सव के बाद सुपार्श्वनाथ नाम रखा। सभी तीर्थंकरों को अपनी आयु के प्रारम्भिक आठ वर्ष के बाद देशसंयम हो जाता है। किसी समय भगवान ऋतु का परिवर्तन देखकर वैराग्य को प्राप्त हो गये। तत्क्षण देवों द्वारा लाई गई 'मनोगति' पालकी पर बैठकर सहेतुक वन में जाकर ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी के दिन वेला का नियम लेकर एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। सोमखेट नगर के महेन्द्रदत्त राजा ने भगवान को प्रथम आहारदान दिया। छद्मस्थ अवस्था के नौ वर्ष व्यतीत कर फाल्गुन कृष्ण षष्ठी के दिन केवलज्ञान प्राप्त किया। आयु अन्त के एक माह पहले सम्मेदशिखर पर जाकर एक माह का प्रतिमायोग लेकर फाल्गुन कृष्णा सप्तमी के दिन सूर्योदय के समय मोक्ष को चले गये।

८. तीर्थंकर चन्द्रप्रभदेव

इस मध्यलोक के पुष्कर द्वीप में पूर्व मेरु के पश्चिम की ओर विदेह क्षेत्र में सीतोदा नदी के उत्तर तट पर एक 'सुगन्धि' नाम का देश है। उस देश के मध्य में श्रीपुर नाम का नगर है। उसमें इन्द्र के समान कांति का धारक श्रीषेण राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी धर्मपरायणा श्रीकांता नाम की रानी थी। दम्पत्ति पुत्र रहित थे अतः पुरोहित के उपदेश से पंच वर्ण के अमूल्य रत्नों से जिन प्रतिमायें बनवाईं, आठ प्रातिहार्य आदि से विभूषित इन प्रतिमाओं की विधिवत् प्रतिष्ठा करवाई, पुनः उनके गंधोदक से अपने आपको और रानी को पवित्र किया और आष्टाह्निकी महापूजा विधि की। कुछ दिन पश्चात् रानी ने उत्तम स्वप्नपूर्वक गर्भधारण किया पुनः नवमास के बाद पुत्र को जन्म दिया। बहुत विशेष उत्सव के साथ उसका नाम 'श्रीवर्मा' रखा गया।

किसी समय 'श्रीपद्म' जिनराज से धर्मोपदेश को ग्रहण कर राजा श्रीषेण पुत्र को राज्य देकर दीक्षित हो गया। एक समय राजा श्रीवर्मा भी आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन जिनपूजा महोत्सव करके अपने परिवारजनों के साथ महल की छत पर बैठा था कि आकस्मिक उल्कापात देखकर विरक्त होकर श्रीप्रभ जिनेन्द्र के समीप दीक्षा

लेकर श्रीप्रभ पर्वत पर सन्यास मरण करके प्रथम स्वर्ग में श्रीप्रभ विमान में श्रीधर नाम का देव हो गया।

धातकीखंड द्वीप की पूर्व दिशा में जो इष्वाकार पर्वत है उसके दक्षिण की ओर भरत क्षेत्र में एक 'अलका' देश है। उसमें अयोध्या नगर है उस नगर के अजितंजय राजा की अजितसेना रानी ने किसी समय उत्तम स्वप्न देखे और नवमास बाद श्रीधर देव को जन्म दिया। उसका नाम 'अजितसेन' रखा गया। पुण्य के उदय से अजितसेन ने चक्रवर्ती के चक्ररत्न और वैभव को प्राप्त कर लिया। श्रद्धा आदि गुणों से सम्पन्न राजा ने किसी समय एक मास का उपवास करने वाले अरिन्दम साधु को आहार दान देकर महान पुण्य बन्ध कर लिया था। दूसरे दिन वह राजा गुप्तप्रभ जिनेन्द्र की वन्दना के लिए मनोहर नामक उद्यान में गया। भगवान के मुख से अपने पूर्व भव सुनकर विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। आयु के अन्त में नभस्तिलक पर्वत के अग्रभाग पर शरीर छोड़कर सोलहवें स्वर्ग में इन्द्र हो गया।

पूर्व धातकीखंड द्वीप में सीता नदी के दाहिने तट पर एक मंगलावती नाम का देश है। इसके रत्नसंचय नगर में कनकप्रभ राजा राज्य करते थे उनकी कनकमाला रानी थी। वह अच्युतेन्द्र वहाँ से आकर इन दोनों के पद्मनाभ नाम का पुण्यशाली पुत्र हुआ। किसी समय पद्मनाभ राजा श्रीधर मुनि के समीप धर्मोपदेश श्रवण कर दीक्षित हो गये, सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन कर ग्यारह अंग में पारंगत होकर सिंहनिःक्रीडित आदि कठिन-कठिन तप करने लगे। तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करके आयु के अन्त में विधिवत् मरण करके वैजयन्त विमान में अहमिन्द्र हो गये। इनके श्रीवर्मा, श्रीधरदेव, अजितसेन चक्रवर्ती, अच्युतेन्द्र, पद्मनाभ, अहमिन्द्र, चन्द्रप्रभ भगवान ये सात भव प्रसिद्ध हैं।

पंचकल्याणक वैभव—

अनन्तर जब इनकी छह माह की आयु बाकी रह गई तब जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में चन्द्रपुर नगर के महासेन राजा की लक्ष्मणा

महादेवी के यहाँ रत्नों की वर्षा होने लगी। चैत्र कृष्ण पंचमी के दिन गर्भकल्याणक महोत्सव हुआ एवं पौष कृष्ण एकादशी के दिन भगवान चन्द्रप्रभ का जन्म हुआ। किसी समय दर्पण में अपना मुख देख रहे थे कि भोगों से विरक्त होकर देवों द्वारा लाई गई 'विमला' नाम की पालकी पर बैठकर सर्वर्तुक वन में गये। वहाँ पौष कृष्ण एकादशी के दिन हजार राजाओं के साथ दीक्षा ले ली। पारणा के दिन नलिन नामक नगर में सोमदत्त के यहाँ आहार हुआ था। तीन माह का छद्मस्थ काल व्यतीत कर भगवान दीक्षा वन में नाग वृक्ष के नीचे फाल्गुन कृष्ण सप्तमी के दिन केवलज्ञान को प्राप्त हो गये। ये चन्द्रप्रभ भगवान समस्त आर्य देशों में विहार कर धर्म की प्रवृत्ति करते हुए सम्मेदशिखर पर पहुँचे। एक माह तक प्रतिमायोग से स्थित होकर फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन ज्येष्ठा नक्षत्र में सायंकाल के समय शुक्लध्यान के द्वारा सर्वकर्म को नष्ट कर सिद्धपद को प्राप्त हो गये।

९. तीर्थंकर पुष्पदंतनाथ

पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व दिग्भाग में जो मेरु पर्वत है उसके पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर तट पर पुष्कलावती नाम का एक देश है उसकी पुण्डरीकिणी नगरी में महापद्म नाम का राजा राज्य करता था। किसी दिन भूतहित जिनराज की वंदना करके धर्मोपदेश सुनकर विरक्तमना राजा दीक्षित हो गया। ग्यारह अंगरूपी समुद्र का पारगामी होकर सोलहकारण भावनाओं से तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया और समाधिमरण के प्रभाव से प्राणत स्वर्ग का इन्द्र हो गया।

पंचकल्याणक वैभव—

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की काकन्दी नगरी में इक्ष्वाकु वंशीय काश्यप गोत्रीय सुग्रीव नाम का क्षत्रिय राजा था, उनकी जयरामा नाम की पट्टरानी थी। उन्होंने फाल्गुन कृष्ण नवमी के दिन 'प्राणतेन्द्र' को गर्भ में धारण किया और मार्गशीर्ष शुक्ला प्रतिपदा के

दिन पुत्र को जन्म दिया। इन्द्र ने बालक का नाम 'पुष्पदन्त' रखा। पुष्पदन्तनाथ राज्य करते हुए एक दिन उल्कापात से विरक्ति को प्राप्त हुए तभी लौकान्तिक देवों से स्तुत्य भगवान इन्द्र के द्वारा लाई गई 'सूर्यप्रभा' पालकी में बैठकर मगसिर सुदी प्रतिपदा को दीक्षित हो गये। शैलपुर नगर के पुष्पमित्र राजा ने भगवान को प्रथम आहार दान दिया था। छद्मस्थ अवस्था के चार वर्ष के बाद नाग वृक्ष के नीचे विराजमान भगवान को कार्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन केवलज्ञान प्राप्त हो गया। आर्यदेश में विहार कर धर्मोपदेश देते हुए भगवान अन्त में सम्मेदशिखर पहुँचकर भाद्रपद शुक्ला अष्टमी के दिन सर्व कर्म से मुक्ति को प्राप्त हो गये।

१०. तीर्थंकर शीतलनाथ

पुष्करवरद्वीप के पूर्वार्ध भाग में मेरु पर्वत के पूर्व विदेह में सीता नदी के दक्षिण तट पर 'वत्स' नाम का एक देश है, उसके सुसीमा नगर में पद्मगुल्म नाम का राजा रहता था। किसी समय बसन्त ऋतु की शोभा समाप्त होने के बाद राजा को वैराग्य हो गया और आनन्द नामक मुनिराज के पास दीक्षा लेकर विपाकसूत्र तक अंगों का अध्ययन किया, तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करके आरण नामक स्वर्ग में इन्द्र हो गया।

पंचकल्याणक वैभव—

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मलयदेश के भद्रपुर नगर का स्वामी दृढ़रथ राज्य करता था, उसकी महारानी का नाम सुनन्दा था। रानी सुनन्दा ने चैत्र कृष्णा अष्टमी के दिन उस आरणेन्द्र को गर्भ में धारण किया एवं माघ शुक्ल द्वादशी के दिन भगवान शीतलनाथ को जन्म दिया। भगवान ने किसी समय वन विहार करते हुए क्षणभर में पाले के समूह (कुहरा) को नष्ट हुआ देखकर राज्यभार अपने पुत्र को सौंपकर देवों द्वारा लाई गई 'शुक्रप्रभा' नाम की पालकी पर बैठकर सहेतुक वन में पहुंचे और माघ कृष्ण द्वादशी

के दिन स्वयं दीक्षित हो गये। अरिष्ट नगर के पुनर्वसु राजा ने उन्हें प्रथम खीर का आहार दिया था। अनन्तर छद्मस्थ अवस्था के तीन वर्ष बिताकर पौष कृष्ण चतुर्दशी के दिन बेल वृक्ष के नीचे केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। अन्त में सम्मेदशिखर पहुँच कर एक माह का योग निरोध कर आश्विन शुक्ला अष्टमी के दिन कर्म शत्रुओं को नष्ट कर मुक्तिपद को प्राप्त हो गये।

११. तीर्थंकर श्रेयांसनाथ

पुष्करार्ध द्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्र के सुकच्छ देश में सीता नदी के उत्तर तट पर क्षेमपुर नाम का नगर है। उसमें नलिनप्रभ नाम का राजा राज्य करता था। एक समय सहस्राम्रवन में श्री अनन्त जिनेन्द्र पधारे। उनके धर्मोपदेश से विरक्तमना राजा बहुत से राजाओं के साथ दीक्षित हो गया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके समाधिमरणपूर्वक अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में अच्युत नाम का इन्द्र हुआ।

पंचकल्याणक वैभव—

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सिंहपुर नगर का स्वामी इक्ष्वाकुवंश से प्रसिद्ध 'विष्णु' नाम का राजा राज्य करता था। उसकी वल्लभा का नाम सुनन्दा था। ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी के दिन श्रवण नक्षत्र में उस अच्युतेन्द्र ने माता के गर्भ में प्रवेश किया। सुनन्दा ने नौ मास बिताकर फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन तीन ज्ञानधारी भगवान को जन्म दिया। इन्द्र ने उसका नाम 'श्रेयांसनाथ' रखा। किसी समय बसन्त ऋतु का परिवर्तन देखकर भगवान को वैराग्य हो गया, तदनन्तर देवों द्वारा उठाई जाने योग्य 'विमलप्रभा' पालकी पर विराजमान होकर मनोहर नामक उद्यान में पहुँचे और फाल्गुन शुक्ल एकादशी के दिन हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। दूसरे दिन सिद्धार्थ नगर के नन्द राजा ने भगवान को खीर का

आहार दिया। छद्मस्थ अवस्था के दो वर्ष बीत जाने पर मनोहर नामक उद्यान में तुंबुरु वृक्ष के नीचे माघ कृष्णा अमावस्या के दिन सायंकाल के समय भगवान को केवलज्ञान प्रगट हो गया। धर्म का उपदेश देते हुए सम्मेदशिखर पर पहुँच कर एक माह तक योग का निरोध करके श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन भगवान श्रेयांसनाथ निःश्रेयसपद को प्राप्त हो गये।

१२. तीर्थंकर वासुपूज्यनाथ

पुष्करार्ध द्वीप के पूर्व मेरु की ओर सीता नदी के दक्षिण तट पर वत्सकावती नाम का देश है। उसके अतिशय प्रसिद्ध रत्नपुर नगर में पद्मोत्तर नाम का राजा राज्य करता था। किसी दिन मनोहर नाम के पर्वत पर युगन्धर जिनेन्द्र विराजमान थे। पद्मोत्तर राजा वहाँ जाकर भक्ति, स्तोत्र, पूजा आदि करके अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करते हुए दीक्षित हो गया। ग्यारह अंगों का अध्ययन करके दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं की सम्पत्ति से तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध कर लिया। जिससे महाशुक्र विमान में महाशुक्र नामका इन्द्र हुआ।

पंचकल्याणक वैभव—

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में चम्पानगर में 'अंग' नाम का देश है जिसका राजा वसुपूज्य था और रानी जयावती थी। आषाढ़ कृष्ण षष्ठी के दिन रानी ने पूर्वोक्त इन्द्र को गर्भ में धारण किया और फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन पुण्यशाली पुत्र को उत्पन्न किया। इन्द्र ने जन्म उत्सव करके पुत्र का 'वासुपूज्य' नाम रखा। जब कुमार काल के अठारह लाख वर्ष बीत गये तब संसार से विरक्त होकर भगवान जगत के यथार्थस्वरूप का विचार करने लगे। तत्क्षण ही देवों के आगमन हो जाने पर देवों द्वारा निर्मित पालकी पर सवार होकर मनोहर नामक उद्यान में गये और फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन छह सौ छिहत्तर राजाओं के साथ स्वयं दीक्षित हो गये। छद्मस्थ अवस्था का एक वर्ष बीत जाने पर भगवान ने कदम्ब वृक्ष के नीचे

बैठकर माघ शुक्ल द्वितीया के दिन सायंकाल में केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। भगवान बहुत समय तक आर्यखंड में विहार कर चम्पानगरी में आकर एक वर्ष तक रहे। जब आयु में एक माह शेष रह गया तब योग निरोध कर रजतमालिका नामक नदी के किनारे की भूमि पर वर्तमान चम्पापुरी नगरी में स्थित मन्दारगिरि के शिखर को सुशोभित करने वाले मनोहर उद्यान में पर्यंकासन से स्थित होकर भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी के दिन चौरानवे मुनियों के साथ मुक्ति को प्राप्त हुए।

१३. तीर्थंकर विमलनाथ

पश्चिम धातकीखंड द्वीप में मेरु पर्वत से पश्चिम की ओर सीता नदी के दक्षिण तट पर रम्यकावती नाम का एक देश है। उसके महानगर में पद्मसेन राजा राज्य करता था। किसी एक दिन राजा पद्मसेन ने प्रीतिंकर वन में स्वर्गगुप्त केवली के समीप धर्म का स्वरूप जाना और यह भी जाना कि 'मैं तीसरे भव में तीर्थंकर होऊँगा।' उस समय उसने ऐसा उत्सव मनाया कि मानों मैं तीर्थंकर ही हो गया हूँ। अनन्तर सोलहकारण भावनाओं द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया। अन्त में सहस्रार स्वर्ग में सहस्रार इन्द्र हो गया।

पंचकल्याणक वैभव—

इसी भरत क्षेत्र के कांपिल्य नगर में भगवान ऋषभदेव का वंशज कृतवर्मा नाम का राजा राज्य करता था। जयश्यामा उसकी प्रसिद्ध महादेवी थी। उसने ज्येष्ठ कृष्ण दशमी के दिन उस इन्द्र को गर्भ में धारण किया, माघ कृष्ण चतुर्थी के दिन जयश्यामा ने तीन लोक के गुरु भगवान को जन्म दिया। इन्द्र ने उनका नाम 'विमलनाथ' रखा।

एक दिन भगवान ने हेमन्त ऋतु में बर्फ की शोभा को तत्क्षण में विलीन होते हुए देखा, जिससे उन्हें पूर्व जन्म का स्मरण हो गया। तत्क्षण ही भगवान विरक्त हो गये। तदनन्तर देवों द्वारा लाई गई

'देवदत्ता' पालकी पर बैठकर सहेतुक वन में गये और स्वयं दीक्षित हो गये, उस दिन माघ शुक्ला चतुर्थी थी। जब तपश्चर्या करते हुए तीन वर्ष बीत गये तब भगवान दीक्षावन में जामुन वृक्ष के नीचे ध्यानारूढ़ होकर घातिया कर्मों का नाशकर माघ शुक्ल षष्ठी के दिन केवली हो गये। अन्त में सम्मेदशिखर पर जाकर एक माह का योग निरोध कर आठ हजार छह सौ मुनियों के साथ आषाढ़ कृष्ण अष्टमी के दिन सिद्धपद को प्राप्त हो गये।

१४. तीर्थंकर अनन्तनाथ

धातकी खंड द्वीप के पूर्व मेरु से उत्तर की ओर अरिष्टपुर नगर में पद्मरथ राजा राज्य करता था। किसी दिन उसने स्वयंप्रभ जिनेन्द्र के समीप जाकर वंदना भक्ति आदि करके धर्मोपदेश सुना और विरक्त हो दीक्षा ले ली। ग्यारह अंगरूपी सागर का पारगामी होकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया। अन्त में सल्लेखना से मरण कर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में इन्द्रपद प्राप्त किया।

पंचकल्याणक वैभव—

इस जम्बूद्वीप के दक्षिण भारत की अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन महाराज राज्य करते थे, उनकी महारानी का नाम जयश्यामा था। कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा के दिन वह अच्युतेन्द्र रानी के गर्भ में अवतीर्ण हुआ। नव माह के बाद ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र ने पुत्र का नाम 'अनन्तनाथ' रखा। भगवान को राज्य करते हुए पन्द्रह लाख वर्ष बीत गये तब एक दिन उल्कापात देखकर भगवान विरक्त हो गये। भगवान देवों द्वारा निर्मित पालकी पर सवार होकर सहेतुक वन में गये तथा ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी के दिन एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। छद्मस्थावस्था के दो वर्ष बीत जाने पर चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। अन्त में सम्मेदशिखर पर जाकर एक माह का योग निरोध कर छह हजार एक सौ मुनियों के साथ चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन परमपद को प्राप्त कर लिया।

१५. तीर्थंकर धर्मनाथ

पूर्व धातकी खंड द्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में नदी के दक्षिण तट पर एक वत्स नाम का देश है, उसमें सुसीमा नाम का महानगर है। वहां पर राजा दशरथ राज्य करता था। एक बार वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन सब लोग उत्सव मना रहे थे। उसी समय चन्द्रग्रहण पड़ा देख कर राजा दशरथ का मन भोगों से विरक्त हो गया। उसने दीक्षा लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध करके अन्त में सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गया।

पंचकल्याणक वैभव—

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक रत्नपुर नाम का नगर था उसमें कुरुवंशीय काश्यपगोत्रीय महाविभव सम्पन्न भानु महाराज राज्य करते थे उनकी रानी का नाम सुप्रभा था। रानी सुप्रभा के गर्भ में वह अहमिन्द्र वैशाख शुक्ल त्रयोदशी के दिन अवतीर्ण हुए और माघ शुक्ल त्रयोदशी के दिन रानी ने भगवान को जन्म दिया। इन्द्र ने धर्मतीर्थ प्रवर्तक भगवान को 'धर्मनाथ' कहकर सम्बोधित किया था। किसी एक दिन उल्का के देखने से भगवान विरक्त हो गये और नागदत्ता नाम की पालकी में बैठकर शालवन के उद्यान में पहुँचे। माघ शुक्ल त्रयोदशी के दिन एक हजार राजाओं के साथ स्वयं दीक्षित हो गये। तदनन्तर छद्मस्थ अवस्था का एक वर्ष बीत जाने पर दीक्षावन में सप्तच्छद वृक्ष के नीचे पौष शुक्ल पूर्णिमा के दिन केवलज्ञान को प्राप्त हो गये। आर्यखण्ड में सर्वत्र धर्मोपदेश देकर भगवान अन्त में सम्मेद शिखर पधारे और एक माह का योग निरोध कर आठ सौ नौ मुनियों के साथ ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्थी के दिन मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त हुए।

१६. तीर्थंकर शान्तिनाथ

इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में रत्नपुर नाम का नगर है। उस नगर का राजा श्रीषेण था, उसके सिंहनन्दिता और अनिन्दिता नाम की दो रानियाँ थीं। इन दोनों के इन्द्रसेन और उपेन्द्रसेन नाम के दो पुत्र थे। उसी नगर की सत्यभामा नाम की एक ब्राह्मण कन्या अपने पति को दासी पुत्र जानकर उसे त्याग कर राजा के यहाँ अपने धर्म की रक्षा करते हुए रहने लगी थी। किसी एक दिन राजा श्रीषेण ने अपने घर पर हुए आदित्यगति और अरिंजय नाम के दो चारण मुनियों को पड़गाहन कर स्वयं आहारदान दिया और पंचाश्चर्य प्राप्त किये तथा दश प्रकार के कल्पवृक्षों के भोग प्रदान करने वाली उत्तरकुरु भोगभूमि की आयु बाँध ली। दान देकर राजा की दोनो रानियों ने तथा दान की अनुमोदना से सत्यभामा ने भी उसी उत्तम भूमि की आयु बाँध ली सो ठीक ही है क्योंकि साधुओं के समागम से क्या नहीं होता?

किसी समय इन्द्रसेन की रानी श्रीकांता के साथ अनन्तमति नाम की एक साधारण स्त्री आई थी उसके साथ उपेन्द्रसेन का स्नेह समागम हो गया। इस निमित्त को लेकर बगीचे में दोनों भाईयों का युद्ध शुरू हो गया। राजा इस युद्ध को रोकने में असमर्थ रहे, साथ ही अत्यन्त प्रिय अपने इन पुत्रों के अन्याय को सहन करने में असमर्थ रहे अतः वे विषपुष्प सूंघ कर मर गये, वही विषपुष्प सूंघ कर दोनों रानियां और सत्यभामा भी प्राणरहित हो गईं तथा धातकी खंड के पूर्वार्ध भाग में जो उत्तर कुरु प्रदेश है उसमें राजा तथा सिंहनन्दिता दोनों दम्पत्ती हुए और अनिन्दिता नाम की रानी आर्य तथा सत्यभामा उसकी स्त्री हुई इस प्रकार वे सब वहाँ भोगभूमि के सुखों को भोगते हुए सुख से रहने लगे।

राजा श्रीषेण का जीव भोगभूमि से चलकर सौधर्म स्वर्ग के श्रीप्रभ विमान में श्रीप्रभ नाम का देव हुआ। रानी सिंहनन्दिता का जीव उसी स्वर्ग के श्रीनिलय विमान में विद्युतप्रभा नाम की देवी हुई। सत्यभामा ब्राह्मणी और अनिन्दिता नाम की रानी के जीव क्रमशः

विमलप्रभ विमान में शुक्लप्रभा नाम की देवी और विमलप्रभ नाम के देव हुए।

विजयार्ध के राजा ज्वलनजटी के पुत्र अर्ककीर्ति थे। उस अर्ककीर्ति की ज्योतिर्माला रानी से राजा श्रीषेण का जीव श्रीप्रभ विमान से स्वर्ग में आकर अमिततेज नाम का पुत्र हुआ है। सिंहनन्दिता का जीव अमित तेज की ज्योतिःप्रभा नाम की स्त्री हुई। देवी अनिन्दिता का जीव श्रीविजय हुआ और सत्यभामा का जीव अमित तेज की बहन सुतारा हुआ है। यह अमित तेज विद्याधर समस्त पर्वों में उपवास करता था। दोनों श्रेणियों का अधिपति होने से वह सब विद्याधरों का राजा था। किसी एक दिन दमवर नामक चारण ऋद्धिधारी मुनि को विधिपूर्वक आहार दान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये।

किसी समय अमिततेज और विजय दोनों ने मुनि के मुख से अपनी आयु एक मास मात्र है ऐसा जानकर अपने पुत्रों को राज्य दे दिया और बड़े आदर से अष्टाह्निका पूजा की तथा नन्दन नामक मुनि के समीप चन्दन वन में सब परिग्रह त्याग कर प्रायोपगमन सन्यास धारण कर लिया। अन्त में समाधिमरण कर शुद्ध बुद्धि का धारक अमिततेज तेरहवें स्वर्ग के नन्द्यावर्त विमान में रविचूल नाम का देव हुआ और श्रीविजय भी इसी स्वर्ग के स्वस्तिक विमान में मणिचूल नाम का देव हुआ।

वहाँ के भोगों का अनुभव करके रविचूल नाम का देव नन्द्यावर्त विमान से च्युत होकर जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में स्थित वत्सकावती देश की प्रभाकरी नगरी के राजा स्तिमित सागर और उनकी रानी वसुन्धरा के अपराजित नाम का पुत्र हुआ। मणिचूल देव भी स्वस्तिक विमान से च्युत होकर उसी राजा की अनुमति नाम की रानी के अनन्तवीर्य नाम का लक्ष्मी सम्पन्न पुत्र हुआ। ये दोनों भाई बलभद्र और अर्द्धचक्री नारायण पद के धारक हुए तथा दमितारि नाम के प्रतिनारायण को मार कर चक्ररत्न को प्राप्त कर बहुत काल तक राज्य के उत्तम सुखों का अनुभव करते रहे।

किसी समय अनन्तवीर्य के मरण से बलभद्र अपराजित पहले तो बहुत दुःखी हुए, जब प्रबुद्ध हुए तब अनन्तसेन नामक पुत्र के

लिए राज्य देकर यशोधर मुनिराज के समीप दीक्षा धारण कर ली। वे तीसरा अवधिज्ञान प्राप्त कर अत्यन्त शान्त हो गये और तीस दिन का सन्यास लेकर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुए।

इधर अनन्तवीर्य नारायण नरक गया था वहाँ पर जाकर धरणेन्द्र ने उसे समझा बुझाकर सम्यक्त्व ग्रहण कराया। उसके प्रभाव से वह अनन्तवीर्य नरक से निकलकर जम्बूद्वीपसम्बन्धी भरत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के राजा मेघवाहन की रानी मेघमालिनी से मेघनाद नाम का पुत्र हो गया। कालान्तर में दीक्षा लेकर आयु के अन्त में मरकर तपश्चरण के प्रभाव से अच्युत स्वर्ग में प्रतीन्द्र हो गये और इन्द्र के साथ उत्तम प्रीति रखकर स्वर्ग सुख का अनुभव करने लगे।

अपराजित का जीव जो पहले इन्द्र हुआ था वह पहले च्युत हुआ और इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्र के रत्नसंचय नामक नगर में राजा क्षेमंकर तीर्थंकर की कनकचित्रा नाम की रानी से मेघ की बिजली के समान पुण्यात्मा श्रीमान 'वज्रायुध नाम का पुत्र हुआ। इस पुत्र की उत्पत्ति में आधान, प्रीति, सुप्रीति, धृति, मोद, प्रियोद्भव आदि क्रियायें की गई थीं। जिस प्रकार चन्द्रमा शुक्ल पक्ष को पाकर कान्ति तथा चन्द्रिका से सुशोभित होता है उसी प्रकार वह वज्रायुध भी तरुण अवस्था पाकर राज्यलक्ष्मी तथा लक्ष्मीमती नामक स्त्री से सुशोभित हो रहा था। उन वज्रायुध और लक्ष्मी के अनन्तवीर्य (प्रतीन्द्र) का जीव सहस्रायुध नाम का पुत्र हुआ। इस प्रकार राजा क्षेमंकर पुत्र—पौत्र आदि परिवार से परिवृत होकर राज्य करते थे।

किसी समय क्षेमंकर तीर्थंकर वज्रायुध का राज्याभिषेक करके लौकान्तिक देवों द्वारा स्तुति को प्राप्त होते हुए तपोवन को चले गये और तपश्चरण के प्रभाव से केवलज्ञान को प्राप्त कर बारह सभाओं को दिव्यध्वनि द्वारा सन्तुष्ट करने लगे।

इधर वज्रायुध के यहाँ चक्ररत्न की उत्पत्ति हो गई और वे चक्रवर्ती हो गये। दिग्विजय करके षट्खंड पृथ्वी को जीतकर सार्वभौम राज्य करने लगे।

किसी समय नाती के केवलज्ञान का उत्सव देखने से वज्रायुध चक्रवर्ती को भी आत्मज्ञान हो गया जिससे उन्होंने सहस्रायुध पुत्र को राज्य देकर क्षेमंकर तीर्थंकर के समीप पहुंचकर दीक्षा धारण कर ली। दीक्षा के बाद ही उन्होंने सिद्धिगिरि पर्वत पर जाकर एक वर्ष के लिये प्रतिमायोग धारण कर लिया। उनके चरणों का आश्रय पाकर सर्पों की बहुत सी वामियाँ तैयार हो गईं सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुष चरणों में लगे हुए शत्रुओं को भी बढ़ाते हैं। उनके शरीर के चारों तरफ सघनरूप से जमी हुई लतायें भी मानों उनके परिणामों की कोमलता को प्राप्त करने के लिए उन मुनिराज के पास जा पहुँची थीं।

इधर वज्रायुध के पुत्र सहस्रायुध को भी किसी कारण से वैराग्य हो गया उन्होंने अपना राज्य शतबली को दे दिया, सब प्रकार की इच्छाएं छोड़ दीं और पिहितास्रव नाम के मुनिराज के पास उत्तम संयम धारण कर लिया। जब पिता वज्रायुध मुनि का एक वर्ष का योग समाप्त हो गया तब वे सहस्रायुध मुनि उन्हीं के समीप जा पहुँचे। पिता पुत्र दोनों ने चिरकाल तक दुःसह तपस्या की। अन्त में वे वैभार पर्वत के अग्रभाग पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने शरीर से स्नेह रहित हो सन्यास मरण किया और ऊर्ध्व ग्रैवेयक के नीचे के सौमनस नामक विमान में बड़ी ऋद्धि के धारक अहमिन्द्र हुए।

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती नाम का देश है उसकी पुंडरीकिणी नगरी में राजा घनरथ राज्य करते थे, उनकी मनोहरा नाम की सुन्दर रानी थी। वज्रायुध का जीव ग्रैवेयक से च्युत होकर उन्हीं दोनों के मेघरथ नाम का पुत्र हुआ उसके जन्म के पहले गर्भाधान आदि क्रियायें हुई थीं। उन्हीं घनरथ राजा की मनोरमा नाम की दूसरी रानी से सहस्रायुध का जीव (अहमिन्द्र) दृढ़रथ नाम का पुत्र हो गया। राजा घनरथ ने तरुण होने पर मेघरथ का विवाह प्रियमित्रा और मनोरमा के साथ किया था और दृढ़रथ का विवाह सुमतिदेवी से किया था। इस प्रकार पुत्र-पौत्र आदि सुख के समस्त साधनों से युक्त राजा घनरथ सिंहासन पर बैठकर इन्द्र की लीला धारण कर रहे थे।

इसी बीच में प्रियमित्रा पुत्रवधु की सुषेणा नाम की दासी घनतुंड नामक मुर्गा लाकर दिखलाती हुई बोली कि यदि दूसरों के मुर्गे इसे जीत लें तो मैं एक हजार दीनार दूंगी। यह सुनकर छोटी पुत्रवधु की कांचना नाम की दासी एक वज्रतुंड नामक मुर्गा ले आई । दोनों का युद्ध होने लगा वह युद्ध दोनों मुर्गों के लिए दुःख का कारण था तथा देखने वालों के लिये भी हिंसानन्द आदि रौद्रध्यान कराने वाला था अतः धर्मात्माओं के देखने योग्य नहीं, ऐसा विचार कर राजा घनरथ बहुत से भव्यजीवों को शान्ति प्राप्त कराने के लिये अपने पुत्र मेघरथ से उन मुर्गों के पूर्व भव पूछने लगे।

अवधिज्ञान के धारक मेघरथ ने बतलाया कि जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में रत्नपुर नाम का नगर है। उसमें भद्र और धन्य नाम के दो सगे भाई थे। दोनों ही गाड़ी चलाने का काम करते थे एक दिन दोनों भाई नदी के किनारे बैल के निमित्त लड़ पड़े और मरकर नदी के किनारे श्वेतकर्ण-ताम्रकर्ण नाम के जंगली हाथी हुए। वहाँ भी पूर्व वैर के संस्कार से लड़कर मरे और दोनों भैंसे हुए पुनः लड़कर मरे और मेढ़ा हुए, मेढ़े भी परस्पर में लड़े और ये दोनों मुर्गे हुए हैं। दो विद्याधर हम लोगों से मिलने के लिये यहाँ आये थे और विद्या से इन मुर्गों में प्रविष्ट होकर इन्हें और अधिक शक्तिशाली बना रहे हैं। इस तरह मेघरथ से सब समाचार सुनकर उन विद्याधरों ने अपना स्वरूप प्रकट किया राजा घनरथ और कुमार मेघरथ की पूजा की तथा गोवर्धन मुनिराज के समीप जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

उन दोनों मुर्गों ने भी अपना पूर्वभव का सम्बन्ध जानकर परस्पर का बंधा हुआ वैर छोड़ दिया और अन्त में साहस के साथ सन्यास धारण कर लिया एवं भूतरमण तथा देवरमण नामक वन में ताम्रचूल और कनकचूल नाम के भूतजातीय व्यन्तर हुए।

उसी समय वे देव पुंडरीकिणी नगरी में आये और प्रेम से मेघरथ युवराज की पूजा कर अपने मुर्गे के भव को बतलाकर परमोपकारी मान कर कुछ प्रत्युपकार करने की प्रार्थना करने लगे। अन्त में उन दोनों देवों ने कहा कि आप मानुषोत्तर पर्वत के भीतर

विद्यमान समस्त संसार को देख लीजिये। हम लोगों के द्वारा आपका कम-से-कम यही उपकार हो जावे। देवों के ऐसा कहने पर कुमार ने जब 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति प्रदान कर दी तब देवों ने कुमार को उनके आप्तजनों के साथ अनेक ऋद्धियों से युक्त विमान में बैठाया और आकाश मार्ग में ले जाकर यथाक्रम से चलते-चलते सुन्दर देश दिखलाये।

वे बतलाते जाते थे कि यह पहला भरत क्षेत्र है, यह हैमवत है इत्यादिरूप से सभी क्षेत्र, पर्वतों को दिखलाते हुए मानुषोत्तर पर्वत के भीतर के सभी अकृत्रिम चैत्यालयों की वन्दना करा दी। तदनन्तर बड़े उत्सव से युक्त नगर में वापस आ गये। आचार्य कहते हैं कि जो मनुष्य अपने उपकारी का प्रत्युपकार नहीं करता है वह गन्धरहित पुष्प के सदृश जीवित भी मृतकवत् है।

घनरथ महाराज तीर्थंकर थे। किसी दिन विरक्त होकर दीक्षित हो गये। इधर मेघरथ महाराज ने दमवर नामक ऋद्धिधारी मुनि को आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। कभी नन्दीश्वर पर्व में महापूजा कर रात्रि में प्रतिमा योग से ध्यान करते थे और इन्द्रों द्वारा पूजा को प्राप्त होते थे। किसी दिन घनरथ तीर्थंकर के समवसरण में धर्मोपदेश को सुनकर संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हो गये और अपने पुत्र को राज्य देकर दृढ़रथ भाई और अन्य सात हजार राजाओं के साथ दीक्षित होकर ग्यारह अंग के पाठी हो गये और सोलह कारण भावनाओं से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध कर लिया। अत्यन्त धीर वीर मेघरथ ने दृढ़रथ के साथ 'नमस्तिलक' पर्वत पर आकर एक महीने का प्रायोपगमन संन्यास धारण कर शरीर छोड़कर अहमिन्द्र[1] पद प्राप्त कर लिया।

शान्तिनाथ का जन्म—

कुरुजांगल देश की हस्तिनापुर राजधानी में काश्यप गोत्रीय राजा विश्वसेन राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम ऐरावती था। भगवान शान्तिनाथ के गर्भ में आने के छह महीने पहले से ही इन्द्र की आज्ञा से हस्तिनापुर नगर में माता के आँगन में रत्नों की वर्षा

१. ये अहमिन्द्र ही शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए हैं।

होने लगी और श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ माता की सेवा में तत्पर हो गईं। भादों वदी सप्तमी के दिन भरणी नक्षत्र में रानी ने गर्भ धारण किया। उस समय स्वर्ग से देवों ने आकर तीर्थंकर महापुरुष का गर्भ महोत्सव मनाया और माता-पिता की पूजा की।

नव मास व्यतीत होने के बाद रानी ऐरादेवी ने ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन याम्ययोग में प्रातःकाल के समय तीन लोक के नाथ ऐसे पुत्र रत्न को जन्म दिया। उसी समय चार प्रकार के देवों के यहाँ स्वयं ही बिना बजाये शंखनाद, भेरीनाद, सिंहनाद और घंटानाद होने लगे। सौधर्मेन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर इन्द्राणी और असंख्य देवगणों सहित नगर में आया तथा भगवान को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक मनाया। अभिषेक के अनन्तर भगवान को अनेकों वस्त्रालंकारों से विभूषित करके उनका 'शान्तिनाथ' यह नाम रखा, इस प्रकार भगवान को हस्तिनापुर वापस लाकर माता-पिता को सौंपकर पुनरपि आनन्द नामक नाटक करके अपने-अपने स्थान पर चले गये।

भगवान की आयु एक लाख वर्ष की थी। शरीर चालीस धनुष ऊँचा था। सुवर्ण के समान कांति थी। ध्वजा, तोरण, शंख, चक्र आदि एक हजार आठ शुभ चिह्न उनके शरीर में थे। उन्हीं विश्वसेन की यशस्वती रानी के चक्रायुध नाम का एक पुत्र हुआ। देवकुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए भगवान शान्तिनाथ अपने छोटे भाई चक्रायुध के साथ-साथ वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे। भगवान की यौवन अवस्था आने पर उनके पिता ने कुल, रूप, अवस्था, शील, कान्ति आदि से विभूषित अनेक कन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया।

इस तरह भगवान के जब कुमार काल के पच्चीस हजार वर्ष व्यतीत हो गये तब महाराज विश्वसेन ने उन्हें अपना राज्य समर्पण कर दिया। क्रम से उत्तमोत्तम भोगों का अनुभव करते हुए जब भगवान के पच्चीस हजार वर्ष और व्यतीत हो गये तब उनकी आयुधशाला में चक्रवर्ती के वैभव को प्रगट करने वाला चक्ररत्न उत्पन्न हो गया। इस प्रकार चक्र को आदि लेकर चौदह रत्न और नवनिधियाँ प्रगट हो गईं। इन चौदह रत्नों में चक्र, छत्र, तलवार

और दण्ड ये आयुधशाला में उत्पन्न हुए थे। काकिणी, चर्म और चूड़ामणि श्रीग्रह में प्रकट हुए थे। पुरोहित, सेनापति और गृहपति हस्तिनापुर में मिले थे और कन्या, गज तथा अश्व विजयार्ध पर्वत पर प्राप्त हुए थे। नौ निधियाँ भी पुण्य से प्रेरित हुए इन्द्रों के द्वारा नदी और सागर के समागम पर लाकर दी गई थीं।

चक्ररत्न के प्रकट होने के बाद भगवान ने विधिवत दिग्विजय करके छह खण्ड को जीतकर इस भरतक्षेत्र में एकछत्र शासन किया था। जहाँ पर स्वयं भगवान शान्तिनाथ इस पृथ्वी पर प्रजा का पालन करने वाले थे वहाँ के सुख और सौभाग्य का क्या वर्णन किया जा सकता है? इस प्रकार चक्रवर्ती के साम्राज्य में भगवान की छ्यानवे हजार रानियाँ थीं। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उनकी सेवा करते थे और बत्तीस यक्ष हमेशा चामरों को ढुराया करते थे। चक्रवर्तियों के साढ़े तीन करोड़ बन्धु कुल होते हैं। अठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, तीन करोड़ उत्तम वीर, अनेकों करोड़ विद्याधर और अठासी हजार म्लेच्छ राजा होते हैं। छ्यानवे करोड़ ग्राम, पचहत्तर हजार नगर, सोलह हजार खेट, चौबीस हजार कर्वट, चार हजार मटंब और अड़तालीस हजार पत्तन होते हैं इत्यादि अनेकों वैभव होते हैं।

चौदह रत्नों के नाम—

अश्व, गज, गृहपति, स्थपति, सेनापति, स्त्री और पुरोहित ये सात जीवित रत्न हैं एवं छत्र, असि, दण्ड, चक्र, काकिणी, चिन्तामणि और चर्म ये सात रत्न निर्जीव होते हैं।

नवनिधियों के नाम—

काल, महाकाल, पाण्डु, मानव, शंख, पद्म, नैसर्प, पिंगल और नानारत्न ये नौ निधियाँ हैं। ये क्रम से ऋतु के योग्य द्रव्यों, भाजन, धान्य, आयुध, वादित्र, वस्त्र, हर्म्य, आभरण और रत्नसमूहों को दिया करती हैं।

दशांग भोग—

दिव्यपुर, रत्न, निधि, सैन्य, भोजन, भाजन, शय्या, आसन, वाहन और नाट्य ये चक्रवर्तियों के दशांग भोग होते हैं।

इस प्रकार संख्यात हजार पुत्र-पुत्रियों से वेष्टित भगवान शान्तिनाथ चक्रवर्ती के साम्राज्य को प्राप्त कर दस प्रकार के भोगों का उपभोग करते हुए सुख से काल व्यतीत कर रहे थे। भगवान तीर्थंकर और चक्रवर्ती होने के साथ-साथ कामदेव पद के धारक भी थे।

भगवान का वैराग्य—

जब भगवान के पच्चीस हजार वर्ष साम्राज्य पद में व्यतीत हो गये तब एक समय अलंकार गृह के भीतर अलंकार धारण करते हुए उन्हें दर्पण में अपने दो प्रतिबिम्ब दिखाई दिये। उसी समय उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हो गया और पूर्व जन्म का स्मरण भी हो गया तब भगवान संसार, शरीर और भोगों के स्वरूप का विचार करते हुए विरक्त हो गये। उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर अनेकों स्तुतियों से पूजा स्तुति की। अनन्तर सौधर्म आदि इन्द्र सभी देवगणों के साथ उपस्थित हो गये। भगवान ने नारायण नाम के पुत्र का राज्याभिषेक करके सभी कुटुम्बियों को यथायोग्य उपदेश दिया।

भगवान का दीक्षा ग्रहण—

अनन्तर इन्द्र ने भगवान का दीक्षाभिषेक करके 'सर्वार्थसिद्धि' नाम की पालकी में विराजमान करके हस्तिनापुर नगर के सहस्राम्र वन में प्रवेश किया। उसी समय ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन भरणी नक्षत्र में बेला का नियम लेकर भगवान ने पंचमुष्टि लोंच करके 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' कहते हुए जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली और सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करके ध्यान में स्थिर होते ही मनःपर्ययज्ञान प्राप्त कर लिया।

भगवान का आहार—

मन्दिरपुर के राजा सुमित्र ने भगवान शान्तिनाथ को खीर का आहार देकर पंचाश्चर्य वैभव को प्राप्त किया। इस प्रकार अनुक्रम से तपश्चरण करते हुए भगवान के सोलह वर्ष व्यतीत हो गये।

भगवान को केवलज्ञान की प्राप्ति—

भगवान शान्तिनाथ सहस्राम्र वन में नंद्यावर्त वृक्ष के नीचे पर्यंकासन से स्थित हो गये और पौष कृष्ण दशमी के दिन अन्तर्मुहूर्त में दसवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का नाश कर बारहवें गुणस्थान में ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय का सर्वथा अभाव करके तेरहवें गुणस्थान में पहुंच कर केवलज्ञान से विभूषित हो गये और उन्हें एक समय में ही सम्पूर्ण लोकालोक स्पष्ट दीखने लगा। पहले भगवान ने चक्ररत्न से छह खण्ड पृथ्वी को जीतकर साम्राज्य पद प्राप्त किया था। अब भगवान ने ध्यान चक्र से विश्व में एकछत्र राज्य करने वाले मोहराज को जीतकर केवलज्ञानरूपी साम्राज्य लक्ष्मी को प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने दिव्य समवसरण की रचना कर दी।

समवसरण का संक्षिप्त वर्णन—

यह समवसरण पृथ्वी तल से पाँच हजार धनुष ऊँचा था, इस पृथ्वीतल से एक हाथ ऊँचाई से ही इसकी सीढ़िया प्रारंभ हो गयी थीं। ये सीढ़ियां एक-एक हाथ की थीं और बीस हजार प्रमाण थीं। यह समवसरण गोलाकार रहता है। इसमें सबसे पहले धूलिसाल के बाद चारों दिशाओं में चार मानस्तम्भ हैं। मानस्तंभों के चारों ओर सरोवर है। फिर निर्मल जल से भरी परिखा है। फिर पुष्पवाटिका (लतावन) है। उसके आगे पहला कोट है। उसके आगे दोनों ओर से दो-दो नाट्यशालाएँ हैं। उसके आगे दूसरा अशोक, आम्र, चंपक और सप्तपर्ण का वन है। उसके आगे वेदिका है। तदनन्तर ध्वजाओं की पंक्तियाँ हैं। फिर दूसरा कोट है। उसके आगे वेदिका सहित कल्पवृक्षों का वन है। उसके बाद स्तूप, स्तूपों के बाद मकानों की पंक्तियाँ हैं। फिर स्फटिक मणिमय तीसरा कोट है। उसके भीतर मनुष्य, देव और मुनियों की बारह सभायें हैं। तदनन्तर पीठिका है और पीठिका के अग्रभाग पर कमलासन पर चार अंगुल अधर ही अर्हन्त देव विराजमान रहते हैं। भगवान पूर्व या उत्तर की ओर मुँह कर स्थित रहते हैं फिर भी अतिशय विशेष से चारों दिशाओं में ही

भगवान का मुँह दिखता रहता है। समवसरण में चारों ओर प्रदक्षिणा के क्रम से पहले कोठे में गणधर और मुनिगण, दूसरे में कल्पवासिनी देवियाँ, तीसरे में आर्यिकाएं और श्राविकाएं, चौथे में ज्योतिषी देवांगनायें, पाँचवें में व्यन्तर देवांगनाएँ, छठे में भवनवासी देवांगनायें, सातवें में भवनवासी देव, आठवें में व्यन्तर देव, नवमें में ज्योतिषी देव, दसवें में कल्पवासी देव, ग्यारहवें में चक्रवर्ती आदि मनुष्य और बारहवें में पशु बैठते हैं।

समवसरण में भव्य जीवों का प्रमाण—

भगवान के समवसरण में चक्रायुध को आदि लेकर छत्तीस गणधर थे। बासठ हजार मुनिगण और साठ हजार तीन सौ आर्यिकाएँ, दो लाख श्रावक और चार लाख श्राविकायें, असंख्यातों देव देवियाँ और संख्यातों तिर्यंच थे। इस प्रकार बारहगणों के साथ-साथ भगवान ने बहुत काल तक धर्म का उपदेश दिया।

भगवान का मोक्ष गमन-

जब भगवान की आयु एक माह शेष रह गई तब वे सम्मेद शिखर पर आये और विहार बंद कर अचल योग से विराजमान हो गये। ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन भगवान चतुर्थ शुक्लध्यान के द्वारा चारों अघातिया कर्मों का नाश कर एक समय में लोक के अग्रभाग पर जाकर विराजमान हो गये। वे नित्य, निरंजन, कृतकत्य सिद्ध हो गये। उसी समय इन्द्रादि चार प्रकार के देवों ने आकर निर्वाण कल्याणक की पूजा की और अन्तिम संस्कार करके भस्म से अपने ललाट आदि उत्तमांगों को पवित्र कर स्व-स्वस्थान को चले गये।

ये शान्तिनाथ भगवान तीर्थंकर होने से बारहवें भव पूर्व राजा श्रीषेण थे और मुनि को आहार दान देने के प्रभाव से भोगभूमि में गये थे। फिर देव हुये, फिर विद्याधर हुए, फिर देव हुए, फिर बलभद्र हुए, फिर देव हुए, फिर वज्रायुध चक्रवर्ती हुए। उस भव में इन्होंने दीक्षा ली थी और एक वर्ष का योग धारण कर खड़े हो गये थे तब इनके शरीर पर लताएँ चढ़ गई थीं। सर्पों ने वामी बना ली थीं। पक्षियों ने घोंसले बना लिये थे और ये वज्रायुध मुनिराज ध्यान

में लीन रहे थे। अनन्तर अहमिन्द्र हुए, फिर मेघरथ राजा हुए, उस भव में इन्होंने दीक्षा लेकर घोर तपश्चरण करते हुए सोलह कारण भावनाओं का चिन्तवन किया था और उसके प्रभाव से तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया था। फिर वहाँ से सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुए, फिर वहाँ से आकर जगत् को शांति प्रदान करने वाले सोलहवें तीर्थंकर और पंचम चक्रवर्ती ऐसे शान्तिनाथ भगवान हुए।

उत्तरपुराण में श्री गुणभद्र स्वामी कहते हैं कि इस संसार में अन्य लोगों की बात जाने दीजिए श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र को छोड़कर भगवान तीर्थंकरों में ऐसा कौन है जिसने पूर्व के बारह भवों में से प्रत्येक भव में बहुत भारी वृद्धि प्राप्त की हो?

इसलिये हे विद्वान लोगों! यदि तुम शान्ति चाहते हो तो सबसे उत्तम और सबका भला करने वाले श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र का निरन्तर ध्यान करते रहो। यही कारण है कि आज भी भव्य जीव शांति प्राप्ति के लिए श्री शान्तिनाथ की आराधना करते हैं।

पुष्पदन्त तीर्थंकर से लेकर सात तीर्थंकरों तक उनके तीर्थकाल में धर्म की व्युच्छित्ति हुई। अतः धर्मनाथ तीर्थंकर के बाद पौनपल्य अन्तर पावपल्य काल तक इस भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में धर्म का विच्छेद हो गया अर्थात् हुण्डावसर्पिणी के दोष से उस पावपल्य प्रमाण काल तक दीक्षा लेने वालों का अभाव हो जाने से धर्मरूपी सूर्य अस्त हो गया था उस समय शान्तिनाथ ने जन्म लिया था। तब से आज तक धर्म परम्परा अविछिन्न रूप से चली आ रही है। इसलिए उत्तरपुराण में भी गुणभद्र स्वामी कहते हैं कि -

'भोगभूमि आदि कारणों से नष्ट हुआ मोक्षमार्ग यद्यपि ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों के द्वारा पुनः पुनः दिखलाया गया था तो भी उसे प्रसिद्ध अवधि के अन्त तक ले जाने में कोई भी समर्थ नहीं हो सका, तदनन्तर जो शांतिनाथ भगवान ने मोक्षमार्ग प्रकट किया वही आज तक अखण्डरूप से बाधारहित चला आ रहा है इसलिए इस युग के आद्यगुरु श्री शांतिनाथ भगवान ही हैं क्योंकि उनके पहले जो १५ तीर्थंकरों ने मोक्षमार्ग चलाया था वह बीच-बीच में विनष्ट होता जाता था।'

जिनके शरीर की ऊँचाई एक सौ आठ हाथ है, जो पंचम चक्रवर्ती हैं और कामदेव पद के धारी है, जिनके हरिण का चिह्न है, जो भादों वदी सप्तमी को माता के गर्भ में आये, ज्येष्ठ वदी चौदस को जन्म लिया और ज्येष्ठ वदी चौदस को ही दीक्षा ग्रहण किया, पौष शुक्ल दशमी के दिन केवलज्ञानी हुए पुनः ज्येष्ठ वदी चौदस को ही मुक्तिधाम को प्राप्त हुए ऐसे शांतिनाथ भगवान सदैव हम सबको शांति प्रदान करें।

१७. तीर्थंकर कुंथुनाथ

इसी जम्बूद्वीप के पूर्वविदेह क्षेत्र में सीता नदी के दक्षिण तट पर एक वत्स नाम का देश है। उसके सुसीमा नगर में सिंहरथ राजा राज्य करता था। वह राजा किसी समय उल्कापात देखकर विरक्त हो गया और विरक्त होकर संयम धारण कर लिया। उसने ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त किया तथा सोलहकारण भावनाओं द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। अन्त में समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हो गये।

पंचकल्याणक वैभव—

कुरुजांगल देश के हस्तिनापुर नगर में कौरववंशी काश्यप गोत्रीय महाराज सूरसेन राज्य करते थे। उनकी पट्टरानी का नाम श्रीकान्ता था। उस पतिव्रता देवी ने देवों के द्वारा की हुई रत्नवृष्टि आदि पूजा प्राप्त की थी। श्रावण कृष्ण दशमी के दिन रानी ने सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र को गर्भ में धारण किया। उस समय इन्द्रों ने आकर भगवान का गर्भमहोत्सव मनाया और माता की पूजा करके स्वस्थान को चले गये। क्रम से नवमास व्यतीत हो जाने पर वैशाख शुक्ला प्रतिपदा के दिन पुत्ररत्न को जन्म दिया। उसी समय इन्द्रादि देवगण आये और बालक को सुमेरु पर्वत पर ले जाकर महामहिम जन्माभिषेक महोत्सव करके, अलंकारों से अलंकृत किया एवं बालक का नाम 'कुन्थुनाथ' रखा। वापस लाकर माता-पिता को सौंपकर देवगण स्वस्थान को चले गये। पंचानवे हजार वर्ष की उनकी आयु

थी। पैंतीस धनुष ऊँचा शरीर था और तपाये हुए स्वर्ण के समान शरीर की कान्ति थी।

तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष कुमारकाल के बीत जाने पर उन्हें राज्य प्राप्त हुआ और इतना ही काल बीत जाने पर उन्हें वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन चक्रवर्ती की लक्ष्मी मिली। इस प्रकार वे बाधारहित, निरन्तर दस प्रकार के भोगों का उपभोग करते थे। सारा वैभव शान्तिनाथ के समान ही था। किसी समय भगवान षडंग सेना से संयुक्त होकर क्रीड़ा से वहाँ वापस लौट रहे थे कि मार्ग में उन्होंने किसी मुनि को आतपयोग से स्थित देखा। देखते ही मंत्री के प्रति तर्जनी अंगुली से इशारा किया कि देखो-देखो! मंत्री उन मुनिराज को देखकर नतमस्तक हो गया और पूछने लगा कि हे देव! इस तरह कठिन तप कर ये क्या फल प्राप्त करेंगे? चक्रवर्ती कुंथुनाथ हँसकर कहने लगे कि ये मुनि या तो इसी भव से कर्म काटकर निर्वाण प्राप्त करेंगे या तप के प्रभाव से शाश्वत धाम प्राप्त करेंगे। जो परिग्रह का त्याग नहीं करते वे संसार में ही परिभ्रमण करते रहते हैं। इत्यादि रूप से भगवान ने मंत्री को मोक्ष तथा संसार के कारणों का निरूपण किया। चक्रवर्ती पद के साम्राज्य का उपभोग करते हुए भगवान के तेईस हजार सात सौ पचास वर्ष व्यतीत हो गये।

किसी समय भगवान को पूर्व भव का स्मरण हो जाने से आत्म ज्ञान प्राप्त हो गया और वे भोगों से विरक्त हो गये उसी समय लौकान्तिक देवों ने आकर प्रभु का स्तवन-पूजन किया। उन्होंने अपने पुत्र को राज्यभार देकर इन्द्रों द्वारा किया हुआ दीक्षा कल्याणक उत्सव प्राप्त किया। देवों द्वारा लाई गई विजया नाम की पालकी में सवार होकर भगवान सहेतुक वन में पहुँचे। वहाँ तेला का नियम लेकर वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन कृतिका नक्षत्र में सायंकाल के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। उसी समय प्रभु को मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो गया। दूसरे दिन हस्तिनापुर के धर्ममित्र राजा ने भगवान को आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किये। इसी प्रकार घोर तपश्चरण करते हुए भगवान के सोलह वर्ष बीत

गये। किसी दिन भगवान तेला का नियम लेकर तप करने के लिए वन में तिलक वृक्ष के नीचे विराजमान हुए। वहाँ चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उसी समय देवों ने समवसरण की रचना की। भगवान के समवसरण में स्वयंभू को आदि लेकर पैंतीस गणधर, साठ हजार मुनिराज, साठ हजार तीन सौ पचास आर्यिकाएँ, दो लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकाएँ, असंख्यात देव-देवी और संख्यातों तिर्यंच थे। भगवान दिव्यध्वनि के द्वारा चिरकाल तक धर्मोपदेश देते हुए विहार करते रहे। भगवान का केवली काल तेईस हजार सात सौ चौंतीस वर्ष का था।

जब भगवान की आयु एक मास की शेष रह गयी तब वे सम्मेदशिखर पर पहुँचे और प्रतिमायोग धारण कर लिया। वैशाख शुक्ल प्रतिपदा के दिन रात्रि के पूर्व भाग में समस्त कर्मों से रहित, नित्य, निरंजन, सिद्धपद को प्राप्त हो गये। ये कुंथुनाथ भगवान तीर्थंकर होने के तीसरे भव पहले सिंहरथ राजा थे, मुनि अवस्था में सोलहकारण भावनाओं के प्रभाव से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया पुनः सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुए वहाँ से आकर कुंथुनाथ नाम के १७वें तीर्थंकर, छठे चक्रवर्ती और कामदेव पद के धारक हुए हैं।

तिलोयपण्णत्ति और उत्तरपुराण के अनुसार इन भगवान के भी गर्भ जन्म, तप और ज्ञान ये चारों कल्याणक हस्तिनापुर में ही हुए हैं। भगवान का गर्भकल्याणक श्रावण कृष्णा दशमी को हुआ, दीक्षा कल्याणक चैत्र शुक्ला तृतीया को हुआ तथा जन्म, केवलज्ञान और मोक्षकल्याणक वैशाख शुक्ला प्रतिपदा को हुआ है। भगवान के शरीर की ऊँचाई १४० हाथ प्रमाण थी, बकरे का चिह्न था, ऐसे सत्तरहवें तीर्थंकर कुंथुनाथ भगवान हम और आप सबको शाश्वत सुख प्रदान करें।

१८. तीर्थंकर अरनाथ

इस जम्बूद्वीप में सीता नदी के उत्तर तट पर एक कच्छ नाम का देश है। उसके क्षेमपुर नगर में धनपति राजा राज्य करता था। किसी दिन उसने अर्हन्नन्दन तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से धर्मामृत का पान किया, जिससे विरक्त होकर शीघ्र ही जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। ग्यारहअंगरूपी महासागर का पारगामी होकर सोलह कारण भावनाओं द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। अन्त में प्रायोपगमन संन्यास के द्वारा मरण करके जयंतिविमान में अहमिन्द्र पद प्राप्त किया।

पंचकल्याणक वैभव—

इसी भरत क्षेत्र के कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर नगरी है। यहाँ सोमवंश में उत्पन्न हुए काश्यप गोत्रीय राजा सुदर्शन राज्य करते थे। उनकी मित्रसेना नाम की रानी थी। रानी ने रत्नवृष्टि आदि देव सत्कार पाकर फाल्गुन कृष्ण तृतीया के दिन गर्भ में अहमिन्द्र के जीव को धारण किया। उसी समय देवों ने आकर गर्भ कल्याणक महोत्सव मनाया। रानी मित्रसेना ने नव मास के बाद मगसिर शुक्ल चतुर्दशी के दिन पुष्य नक्षत्र में पुत्ररत्न को जन्म दिया। देवों ने बालक को सुमेरुपर्वत पर ले जाकर जन्माभिषेक महोत्सव करके भगवान का 'अरनाथ' नाम रखा। भगवान की आयु ८४ हजार वर्ष की थी। तीस धनुष ऊँचा अर्थात् १२० हाथ ऊँचा शरीर था। सुवर्ण के समान शरीर की कांति थी।

भगवान के कुमार अवस्था के इक्कीस हजार वर्ष बीत जाने पर उन्हें मंडलेश्वर के योग्य राज्य पद प्राप्त हुआ, इसके बाद इतना ही काल बीत जाने पर चक्रवर्ती पद प्राप्त हुआ। इस तरह भोग भोगते हुए जब आयु का तीसरा भाग बाकी रह गया तब शरद ऋतु के मेघों का अकस्मात् विलय होना देखकर भगवान को वैराग्य हो गया। लौकांतिक देवों के द्वारा स्तुत्य भगवान अपने अरविन्द कुमार को राज्य देकर देवों द्वारा उठाई हुई 'वैजयंती' नाम की पालकी पर

सवार होकर सहेतुक वन में पहुँचे। तेला का नियम कर मगसिर शुक्ला दशमी के दिन रेवती नक्षत्र में भगवान ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। पारणा के दिन चक्रपुर नगर के अपराजित राजा ने भगवान को आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किया।

जब भगवान के छद्मस्थ अवस्था के सोलह वर्ष बीत गये तब वे दीक्षावन में कार्तिक शुक्ल दशमी के दिन रेवती नक्षत्र में आम्रवन के नीचे तेला का नियम लेकर विराजमान हुए और घातिया कर्मों का नाशकर केवली बन गये। देवों ने आकर समवसरण की रचना करके केवलज्ञान की पूजा की। भगवान के समवसरण में तीस गणधर, पचास हजार मुनि, साठ हजार आर्यिकायें, एक लाख साठ हजार श्रावक, तीन लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियां और संख्यातों तिर्यंच थे। इस तरह बारह सभाओं से घिरे हुए भगवान अरनाथ ने बीस हजार नौ सौ चौरासी वर्ष केवली अवस्था में व्यतीत किये।

जब एक माह की आयु शेष रही तब भगवान सम्मेदशिखर पर जाकर प्रतिमायोग से स्थित हो गये। चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन रेवती नक्षत्र में रात्रि के पूर्व भाग में सम्पूर्ण कर्मों से रहित अशरीरी होकर सिद्धपद को प्राप्त हो गये। ये अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ सातवें चक्रवर्ती थे। तीर्थंकर से पूर्व तीसरे भव में ये भगवान धनपति नाम के राजा थे, दीक्षा लेकर सोलहकारण भावनाओं के बल से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया था पुनः जयन्त विमान में अहमिन्द्र हुए, वहाँ से आकर अरनाथ तीर्थंकर हुए हैं। इनका मत्स्य का चिह्न है।

इन अरनाथ के भी गर्भ, जन्म, तप और केवलज्ञान ये चारों कल्याणक हस्तिनापुर नगर में ही हुए हैं। इनको मुक्त हुए लगभग सौ अरब, पैंसठ लाख, छयासी हजार पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। ये अठारहवें तीर्थंकर अरनाथ भगवान सदा हम सबकी रक्षा करें।

१९. तीर्थंकर मल्लिनाथ

इसी जम्बूद्वीप में मेरुपर्वत से पूर्व की ओर कच्छकावती नाम के देश में एक वीतशोक नाम का नगर है। उसमें 'वैश्रवण' नाम का उच्चकुलीन राजा राज्य करता था। किसी समय वह राजा वर्षा के प्रारम्भ में बढ़ती हुई वनावली को देखने के लिये नगर के बाहर गया। वहाँ किसी एक महान राजा के सदृश, अपनी शाखाओं और उपशाखाओं को फैलाकर तथा पृथ्वी को व्याप्त कर स्थित एक विशाल वटवृक्ष को देखा। उसको देख राजा ने समीपवर्ती लोगों से कहा कि देखो-देखो! इसका विस्तार तो देखो! यह ऊँचाई और बद्धमूलता को धारण करता हुआ मानो मेरा ही अनुकरण कर रहा है। इस प्रकार आश्चर्य के साथ बातचीत करता हुआ वह राजा दूसरे वन में चला गया। अनन्तर घूमकर वापस उसी मार्ग से आते हुए देखा कि वही वटवृक्ष वज्र गिरने के कारण तत्क्षण ही जड़ तक भस्म हो गया है। उसे देखकर यह विचार करने लगा कि इस जगत में मजबूत जड़ किसकी है? विस्तार किसका है? और ऊँचाई किसकी है? इत्यादि वटवृक्ष की स्थिति का विचार करते हुए विरक्त हुआ वह राजा नगर में वापस आकर अपने पुत्र को राज्य देकर श्रीनाग पर्वत पर विराजमान श्रीनाग मुनिराज के पास जाकर धर्मामृत का पान करके जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

अनेक प्रकार से तपश्चरण करते हुए ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। सोलहकारण भावनाओं के चिन्तवन से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया। अन्त में संन्यास विधि से प्राण विसर्जन करके अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र पद को प्राप्त कर लिया। वहाँ पर एक हाथ का ऊँचा शरीर था और तेंतीस सागर प्रमाण आयु थी।

पंचकल्याणक वैभव—

इसी भरतक्षेत्र के बंगदेश में मिथिला नगरी के स्वामी इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्रीय 'कुम्भ' नाम के महाराज धर्मनीतिपूर्वक राज्य संचालन कर रहे थे। उनकी रानी का नाम 'प्रजावती' था।

अहमिन्द्र की आयु छह मास की अवशिष्ट रहने पर ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने माता के आँगन में रत्नवर्षा प्रारम्भ कर दी थी।

चैत्र शुक्ला प्रतिपदा के दिन सोलहस्वप्नविलोकनपूर्वक रानी प्रजावती ने अहमिन्द्र देव को गर्भ में धारण किया और मगशिर सुदी एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में पूर्ण चन्द्र सदृश पुत्ररत्न को जन्म दिया। सौधर्म इन्द्र ने समस्त देवों सहित महावैभव के साथ सुमेरु पर्वत पर तीर्थंकर बालक का जन्माभिषेक किया। अनन्तर 'मल्लिनाथ' नामकरण करके मिथिला नगरी में जाकर महामहोत्सव पूर्वक माता-पिता को सौंप दिया।

अरहनाथ तीर्थंकर के बाद एक हजार करोड़ वर्ष बीत जाने पर भगवान मल्लिनाथ हुए हैं। उनकी आयु भी इसी में शामिल थी। पचपन हजार वर्ष की उनकी आयु थी एवं पच्चीस धनुष ऊँचा सुवर्ण वर्णमय शरीर था। कुमार काल के सौ वर्ष बीत जाने पर एक दिन भगवान मल्लिनाथ ने देखा कि समस्त नगर हमारे विवाह के लिए सजाया गया है। सर्वत्र मनोहर वाद्य बज रहे हैं। उसे देखते ही उन्हें पूर्व जन्म के सुन्दर अपराजित विमान का स्मरण आ गया। वे विचार करने लगे कि कहाँ तो वीतरागता से उत्पन्न हुआ प्रेम और उससे प्रकट हुई महिमा और कहाँ सज्जनों को लज्जा उत्पन्न करने वाला यह विवाह? उसी समय लौकांतिक देवों ने आकर भगवान की स्तुति की। अनन्तर सौधर्म आदि इन्द्रों ने देवों सहित आकर 'जयन्त' नामक पालकी पर भगवान को विराजमान किया और श्वेतवन के उद्यान में पहुँचे।

वहाँ पर भगवान ने मगसिर सुदी एकादशी के दिन अश्विनी नक्षत्र में सायंकाल के समय सिद्ध साक्षीपूर्वक बेला का नियम लेकर तीन सौ राजाओं के साथ संयम धारण कर लिया एवं अन्तर्मुहूर्त में ही मनःपर्ययज्ञान को प्राप्त कर लिया। तीसरे दिन पारणा के लिये आये तब मिथिलानगरी के नंदिषेण राजा ने आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त कर लिये।

छद्मस्थ अवस्था के छह दिन व्यतीत हो जाने पर भगवान ने

बेला का नियम लेकर उसी श्वेतवन में अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान लगाया। पौष वदी दूज के दिन अश्विनी नक्षत्र में प्रातःकाल चार घातिया कर्मों का नाश करके भगवान केवलज्ञानी हो गये। उनके समवसरण में विशाख आदि को लेकर अट्ठाईस गणधर थे। चालीस हजार महामुनिराज, बन्धुसेना आदि पचपन हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थीं। भगवान ने बहुत काल तक आर्यखंड में विहार किया।

एक मास की आयु के अवशेष रह जाने पर वे भगवान सम्मेदाचल पर पहुंचे। वहां पाँच हजार मुनियों के साथ योग निरोध किया और फाल्गुन शुक्ला पंचमी के दिन भरणी नक्षत्र में संध्या के समय लोक के अग्रभाग पर विराजमान हो गये। उसी समय देवों ने आकर भगवान का निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया।

२०. तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ

इसी भरत क्षेत्र के अंग देश के चम्पापुर नगर में हरिवर्मा नाम के राजा थे। किसी एक दिन वहाँ के उद्यान में 'अनन्तवीर्य' नाम के निर्ग्रन्थ मुनिराज पधारे। उनकी वन्दना करके राजा ने धर्मोपदेश श्रवण किया और तत्क्षण विरक्त होकर अपने बड़े पुत्र को राज्य देकर अनेक राजाओं के साथ संयम धारण कर लिया। उन्होंने गुरु के समागम से ग्यारह अंगों का अध्ध्यन किया और दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का चिन्तवन कर तीर्थंकर गोत्र का बंध किया। चिरकाल तक तपश्चरण करते हुए अन्त में समाधिपूर्वक मरण करके प्राणत स्वर्ग में इन्द्र हो गये। वहाँ बीस सागर की आयु थी और उनका साढ़े तीन हाथ का ऊँचा शरीर था।

पंचकल्याणक वैभव—

इसी भरतक्षेत्र के मगध देश में राजगृह नाम का नगर है। उसमें हरिवंश शिरोमणि, काश्यपगोत्रीय, सुमित्र महाराज राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम सोमा था। श्रावण कृष्णा द्वितीया के दिन

श्रवण नक्षत्र में रानी ने उन प्राणत इन्द्र को गर्भ में धारण किया अनुक्रम से नव मास के बाद रानी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। देवों ने भगवान का जन्मोत्सव मनाकर 'मुनिसुव्रत' नाम प्रकट किया। मल्लिनाथ के बाद चौवन लाख वर्षों के बीच जाने पर इनका जन्म हुआ। इनकी आयु तीस हजार वर्ष एवं ऊँचाई बीस धनुष की थी।

कुमार काल के सात हजार पाँच सौ वर्ष बीत जाने पर भगवान का राज्याभिषेक हुआ। राज्य अवस्था में प्रभु के पन्द्रह हजार वर्ष बीत जाने पर किसी दिन गर्जती हुई घन-घटा के समय उनके यागहस्ती ने वन का स्मरण कर खाना-पीना बन्द कर दिया। उस समय महाराज मुनिसुव्रतनाथ अपने अवधिज्ञान से उस हाथी के मन की सारी बातें जान गये। वे कुतूहल से भरे मनुष्यों के सामने हाथी का पूर्वभव कहने लगे कि यह हाथी पूर्वभव में तालपुर नगर का नरपति राजा था। अपने उच्चकुल के अभिमान सहित इसने अशुभलेश्याओं से सहित, मिथ्याज्ञानी, पात्र-अपात्र की परीक्षा से रहित किमिच्छिक दान दिया था, उसके फलस्वरूप यह हाथी हुआ है। इस समय भी यह अपने अज्ञान आदि का स्मरण न करता हुआ वन का स्मरण कर रहा है। इतना सुनते ही उस हाथी को अपने पूर्व भव का स्मरण हो गया और उसने प्रभु से संयमासंयम ग्रहण कर लिया।

इसी निमित्त से प्रभु को वैराग्य हो गया और लौकांतिक देवों द्वारा पूजा को प्राप्त भगवान अपराजित नामक पालकी पर बैठकर नीलवन में पहुंचे। वहाँ बेला के उपवास का नियम लेकर वैशाख कृष्ण दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र में सायंकाल के समय एक हजार राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। उनकी प्रथम पारणा का लाभ राजगृह नगर के राजा वृषभसेन को प्राप्त हुआ था।

प्रभु के छद्मस्थ अवस्था के ग्यारह मास व्यतीत हो गये तब वे उसी नीलवन में पहुँचे और बेला के नियम से सहित ध्यानारूढ़ हो गये। वैशाख शुक्ला दशमी के दिन श्रवण नक्षत्र में शाम के समय प्रभु को केवलज्ञान प्रकट हो गया। भगवान के समवसरण में मल्लि को आदि लेकर अठारह गणधर थे, तीस हजार मुनिराज, पुष्पदन्ता

को आदि लेकर पचास हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थीं। भगवान एक मास की आयु अवशेष रहने पर विहार बन्द करके सम्मेद शिखर पर जा पहुँचे तथा एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमायोग में लीन हो गये। फाल्गुन कृष्णा द्वादशी के दिन रात्रि के पिछले भाग में शरीर से रहित अशरीरी सिद्ध हो गये। इन मुनिसुव्रत भगवान को मेरा नमस्कार होवे।

२१. तीर्थंकर नमिनाथ

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्र के वत्स देश में एक कौशाम्बी नाम की नगरी है। उसमें इक्ष्वाकुवंशी 'पार्थिव' नाम के राजा रहते थे और उनकी सुंदरी नाम की रानी थी। इन दोनों के सिद्धार्थ नाम का श्रेष्ठ पुत्र था। राजा ने किसी समय सिद्धार्थ पुत्र को राज्यभार देकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली और आयु के अन्त में समाधिमरणपूर्वक स्वर्गस्थ हो गये। पिता के समाधिमरण का समाचार सुनकर राजा सिद्धार्थ विरक्त हो गये। मनोहर नाम के उद्यान में जाकर महाबल नामक केवलीभगवान से धर्म का स्वरूप सुनकर क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया और शान्त संयमी मुनि हो गये। उन्होंने ग्यारह अंग का ज्ञान प्राप्त करके सोलहकारण भावनाओं के बल से तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध कर लिया। तपश्चरणपूर्वक कर्म की निर्जरा करते हुए अन्त में समाधिमरण करके अपराजित नाम के श्रेष्ठ अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हो गये। वहाँ तेतीस सागर की आयु थी और एक हाथ ऊँचा शरीर था।

पंचकल्याणक वैभव—

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत बंग देश में मिथिलानगरी है। वहाँ पर ऋषभदेव के वंशज काश्यपगोत्रीय विजय महाराज की रानी का नाम 'वप्पिला' था। आश्विन कृष्ण द्वितीया के दिन अश्विनी नक्षत्र में वप्पिला महादेवी के गर्भ में उपर्युक्त अहमिन्द्र का जीव आ गया। आषाढ़ कृष्ण दशमी के दिन स्वाति नक्षत्र में रानी ने तीन ज्ञानधारी पुत्र को जन्म दिया। इन्द्रों ने जन्मोत्सव के बाद पुत्र का नाम

'नमिनाथ' रखा। मुनिसुव्रतनाथ के बाद साठ लाख वर्ष के बीत जाने पर ये तीर्थंकर हुए हैं। प्रभु की आयु दस हजार वर्ष की थी और शरीर पन्द्रह धनुष ऊँचा था।

जब कुमार काल के ढाई हजार वर्ष बीत गये तब उनका राज्याभिषेक हुआ। राज्य करते हुए पाँच हजार वर्ष के बीत जाने पर एक दिन प्रभु वर्षा ऋतु से बादलों के व्याप्त होने पर उत्तम हाथी पर बैठकर वन विहार को गये थे। उसी समय आकाशमार्ग से दो देवों ने आकर विनयपूर्वक नमस्कार करके कहना शुरू किया कि हे देव! इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में वत्सकावती देश है उसकी सुसीमा नगरी में अपराजित नाम के तीर्थंकर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। उस केवलज्ञान की पूजा महोत्सव में हम लोग आये थे। उनकी सभा में प्रश्न हुआ कि क्या इस समय भरतक्षेत्र में कोई तीर्थंकर हैं ? सर्वदर्शी भगवान ने कहा कि हाँ! बंग देश की मिथिला नगरी के राजा नमिनाथ तीर्थंकर होने वाले हैं। इस समय वे देवों द्वारा लाये गये भोगोपभोग का अनुभव करते हुए गृहस्थावस्था में विद्यमान हैं।

उन देवों की बात सुनते ही प्रभु नगर में वापस आ गये। विदेहक्षेत्रस्थ अपराजित तीर्थंकर तथा उनके साथ अपने पूर्व भव के सम्बन्ध का स्मरण कर भगवान संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हो गये। तत्क्षण ही लौकांतिक देवों ने उन महामना की पूजा की। देवों द्वारा आनीत 'उत्तरकुरू' नामक पालकी पर आरूढ़ होकर 'चैत्रवन' नामक उद्यान में पहुंचे। वहाँ बेला का नियम लेकर आषाढ़ कृष्णा दशमी के दिन अश्विनी नक्षत्र में सायं के समय एक हजार राजाओं के साथ ' नमः सिद्धेभ्यः' मंत्र का उच्चारण करते हुए दीक्षित हो गये।

वीरपुर नगर के राजा दत्त ने प्रभु की प्रथम पारणा का लाभ लिया था। छद्मस्थ अवस्था के नव वर्ष बीत जाने पर वे प्रभु एक दीक्षावन में पहुंचकर बेला के नियमपूर्वक वकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गये। मगसिर शुक्ला एकादशी के दिन सायंकाल में लोकालोक प्रकाशी केवलज्ञान को प्राप्त हो गये।

उनके समवसरण में सुप्रभार्य आदि सत्रह गणधर थे। बीस हजार मुनि, मंगिनी आदि पैंतालीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें थीं। विहार करते हुए एक मास की आयु अवशेष रहने पर भगवान नमिनाथ सम्मेद शिखर पर पहुँच गये। वहाँ एक हजार मुनियों के साथ प्रतिमायोग में लीन हुए। प्रभु को वैशाख कृष्णा चतुर्दशी के दिन रात्रि के अन्तिम अश्विनी नक्षत्र में सिद्धपद प्राप्त हो गया। देवों ने आकर निर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया। ऐसे वे नमिनाथ तीर्थंकर सदा हमारी रक्षा करें।

२२. तीर्थंकर नेमिनाथ

पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम सुमेरू की पश्चिम दिशा में जो महानदी (सीतोदा नदी है) उसके उत्तर तट पर एक गंधिल नाम का महादेश है। उसके विजयार्ध पर्वत की उत्तरश्रेणी में सूर्यनगर का स्वामी सूर्यप्रभ राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम धारिणी था दोनों के चिन्तागति, मनोगति और चपलगति नाम के तीन पुत्र हुए। उसी विजयार्ध की उत्तर श्रेणी के अरिन्दमन नगर में राजा अरिंजय की अजितसेना रानी से प्रीतिमती नाम की पुत्री हुई। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो विद्या से मेरु की प्रदक्षिणा में मुझे जीत लेगा मैं उसी से विवाह करूँगी। उसने अपनी विद्या से चिन्तागति को छोड़कर समस्त विद्याधर कुमारों को मेरुपर्वत की तीन प्रदक्षिणा में जीत लिया।

तब चिन्तागति उसे अपने वेग से जीतकर कहने लगा कि तू रत्नों की माला से मेरे छोटे भाई को स्वीकार कर। प्रीतिमती बोली, जिसने मुझे जीता है उसके सिवाय मैं दूसरे का वरण नहीं करूँगी। चिन्तागति ने कहा, चूँकि तूने पहले उन्हें प्राप्त करने की इच्छा से ही मेरे छोटे भाई के साथ गति युद्ध किया था अतः तू मेरे लिये त्याज्य है। चिन्तागति के यह वचन सुनते ही वह विरक्त हो गई और विवृत्ता नाम की आर्यिका के पास जाकर दीक्षित हो गई। यह

देख वहाँ बहुत से लोगों ने दीक्षा धारण कर ली। कन्या का यह साहस देखकर चिन्तागति ने भी अपने दोनों भाइयों के साथ दमवर नामक गुरु के पास दीक्षा ले ली। बहुत काल तक तपश्चरण करते हुये वे तीनों समाधिपूर्वक मरकर चौथे स्वर्ग में देव हो गये।

मनोगति और चपलगति नाम के दोनों छोटे भाई के जीव स्वर्ग से च्युत हुए। जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्व विदेह क्षेत्र के पुष्कला देश में जो विजयार्ध पर्वत है उसकी उत्तर श्रेणी में गगनवल्लभ नगर के राजा गगनचन्द की गगनसुंदरी रानी से दोनों देव के जीव अमितगति और अमिततेज नाम के पुत्र उत्पन्न हो गये।

इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम विदेह में सीतोदा के उत्तर तट पर सुगंधिलादेश में एक सिंहपुर नाम का नगर है। उसके अर्हदास राजा की जिनदत्ता रानी से चिंतागति देव का जीव च्युत होकर पुत्र हो गया। माता-पिता ने उसका नाम अपराजित रखा था।

किसी दिन राजा अर्हदास ने मनोहर नामक उद्यान में पधारे हुए विमलवाहन तीर्थंकर की वंदना करके धर्मरूपी अमृत का पान किया। अनन्तर अपराजित पुत्र को राज्य देकर पाँच सौ राजाओं के साथ मुनि हो गये। कुमार अपराजित पिता के दिये हुए राज्य का संचालन करने लगे और सम्यग्दर्शन तथा अणुव्रत से विभूषित होकर धर्म का पालन करने लगे। किसी दिन उन्होंने सुना कि 'हमारे पिता के साथ श्री विमलवाहन भगवान गंधमादन पर्वत से मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं।' यह सुनते ही उन्होंने प्रतिज्ञा की कि ' मैं विमलवाहन भगवान के दर्शन किये बिना भोजन नहीं करूँगा।' इस प्रतिज्ञा से उसे आठ दिन का उपवास हो गया। तदनंतर इन्द्र की आज्ञा से यक्षपति ने उस राजा को भगवान विमलवाहन का साक्षात्कार कराकर दर्शन कराया अर्थात् समवसरण बनाकर विमलवाहन का दर्शन कराया।

किसी एक दिन बसंत ऋतु में अष्टाह्निका के समय बुद्धिमान राजा अपराजित जिन प्रतिमाओं की पूजा स्तुति करके वहीं पर बैठे हुए धर्मोपदेश कर रहे थे कि उसी समय आकाश से दो चारणऋद्धिधारी मुनिराज आकर वहीं पर विराजमान हो गये। राजा

ने उनके सम्मुख जाकर बड़ी विनय से उनके चरणों में नमस्कार किया, धर्मोपदेश सुना अनन्तर कहा कि हे पूज्य! मैंने पहले कभी आपको देखा है। उनमें से ज्येष्ठ मुनि बोले—हाँ राजन्! ठीक कहते हो, आपने हम दोनों को देखा है परंतु कहाँ देखा है? वह स्थान मैं कहता हूँ सो सुनो—

पुष्करार्ध द्वीप के पश्चिम मेरु संबंधी पश्चिम विदेह में गंधिल नाम का महादेश है। उसके विजयार्ध की उत्तर श्रेणी में सूर्यप्रभ नगर के राजा सूर्यप्रभ के चिंतागति, मनोगति और चपलगति नाम के तीन पुत्र थे। प्रीतिमती नाम की विद्याधर कन्या के गतियुद्ध के प्रसंग में हम तीनों ने दीक्षित होकर तपश्चरण करके चतुर्थ स्वर्ग को प्राप्त किया था।

वहाँ से च्युत होकर हम दोनों छोटे भाई पूर्व विदेह में अमितगति और अमिततेज नाम के विद्याधर हुए हैं। किसी एक दिन हम दोनों पुण्डरीकिणी नगरी गये। वहाँ श्री स्वयंप्रभ तीर्थंकर से हम दोनों ने अपने पिछले तीन जन्मों का वृत्तांत पूछा। तब भगवान ने सब भवावली बतलाई। अनन्तर हमने पूछा कि हमारा बड़ा भाई इस समय कहाँ है? इसके उत्तर में भगवान ने कहा कि वह सिंहपुर का अपराजित नाम का राजा है। यह सुनकर हम दोनों ने उन्हीं के पास जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली और तुम्हें देखने के लिए जन्मान्तर के स्नेहवश यहाँ आये हैं। अब तुम्हारी आयु केवल एक माह की शेष रह गई है शीघ्र ही आत्म कल्याण करो। हे अपराजित! तुम इससे पाँचवें भव में भरत-क्षेत्र के हरिवंश नामक महावंश में 'अरिष्टनेमि' नाम के तीर्थंकर होवोगे।' यह सुनकर राजा ने बार-बार उन मुनियों की वंदना की और कहा कि आप यद्यपि निर्ग्रंथ अवस्था को प्राप्त हुए हैं तो भी जन्मांतर के स्नेह से आपने मेरा बड़ा ही उपकार किया किया। अनंतर मुनिराज के चले जाने के बाद राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर आप प्रायोपगमन संन्यास विधि से मरण करके सोलहवें स्वर्ग में अच्युतेन्द्र हो गये।

वह पुण्यात्मा वहाँ के दिव्य भोगों का अनुभव कर आयु के अंत

में वहाँ से च्युत हुआ। इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र संबंधी कुरुजांगल देश में हस्तिनापुर के राजा श्रीचन्द्र की श्रीमती रानी से सुप्रतिष्ठ नाम का यशस्वी पुत्र हुआ। कालांतर में पिता द्वारा प्रदत्त राज्य का निष्कंटक उपभोग करते हुये किसी दिन यशोधर नामके मुनिराज को आहारदान देकर पंचाश्चर्य को प्राप्त किया। किसी दूसरे दिन वह राजा रानियों के साथ राजमहल की छत पर बैठा हुआ दिशाओं की शोभा का अवलोकन कर रहा था कि इसी बीच अकस्मात् उल्कापात को देखकर विरक्त हो गया और सुमंदर नामक जिनेन्द्र भगवान के पास जाकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली।

''मुनिराज सुप्रतिष्ठ ने ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों का अध्ययन किया और सर्वतोभद्र को आदि लेकर सिंहनिष्क्रीडितपर्यन्त अनेकों व्रतों का अनुष्ठान किया। हे यादव! श्रवण मात्र से ही पापों को नष्ट करने वाले उन उपवासों की महाविधि को तुम स्थिर मन कर के सुनो।'' ऐसा हरिवंश पुराण में बताया है। यहाँ इन व्रतों की विधि न बतलाकर केवल कुछ नाममात्र दिये जाते हैं। विशेष जिज्ञासुओं को हरिवंश पुराण में ही देखना चाहिए।

''सर्वतोभद्र, वसंतभद्र, महासर्वतोभद्र, त्रिलोकसार, वज्रमध्य, मृदंगमध्य, मुरजमध्य, एकावली, द्विकावली, मुक्तावली, रत्नावली, रत्नमुक्तावली, कनकावली, द्वितीय रत्नावली, सिंहनिष्क्रीडित, मध्यम सिंहनिष्क्रीडित तथा उत्तम और जघन्य सिंहनिष्क्रीडित, नंदीश्वर पंक्ति, मेरुपंक्ति, विमानपंक्ति शात कुंभ, चान्द्रायण, सप्तसप्त मतपोविधि, अष्टष्टम, नवनमादि, आचाम्लवर्धन, श्रुतविधि, दर्शनशुद्धि, तपःशुद्धि चारित्रशुद्धि, एककल्याण, पंचकल्याण, शीलकल्याण विधि, भावनाविधि, पंचविंशति-कल्याण भावनाव्रत, दुःखहरण कर्मक्षय, जिनेंद्रगुण संपत्ति, दिव्यलक्षणपंक्ति, धर्मचक्रविधि, परस्पर कल्याण, परिनिर्वाण, प्रातिहार्य प्रसिद्धि, विमान पंक्ति आदि व्रत।

''इस प्रकार विधिवत इन व्रतों के कर्ता सुप्रतिष्ठ मुनिराज ने उस समय निर्मल सोलहकारण भावनाओं के द्वारा तीर्थंकर नाम कर्म का बंध कर लिया।''

जब आयु का अंत आया तब समाधि धारण कर एक महीने का संन्यास लेकर प्राणों का त्याग किया और जयंत नामक अनुत्तर विमान मे अहमिंद्र पद प्राप्त कर लिया। वहां पर तेंतीस सागर की आयु थी और एक हाथ ऊँचा शरीर था। उनको साढ़े सोलह माह के अंत में एक बार श्वास का ग्रहण होता है। तेतीस हजार वर्ष बीत जाने पर एक बार मानसिक आहार था। इस प्रकार सुख सागर में निमग्न उन अहमिंद्र ने वहां की आयु को समाप्त कर दिया।

नेमिनाथ का जन्म—

कुशार्थ देश के शौरीपुर नगर में हरिवंशी राजा शूरसेन रहते थे। उनके वीर नाम के पुत्र की धारिणी रानी से अंधकवृष्टि और नरवृष्टि नाम के दो पुत्र हुए। अंधकवृष्टि की रानी का नाम सुभद्रा था। इन दोनों के समुद्रविजय, स्तिमितसागर, हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, पूरितार्थीच्छ, अभिनंदन और वासुदेव ये दस पुत्र थे तथा कुन्ती और माद्री नाम की दो पुत्रियाँ थीं।

समुद्रविजय की रानी का नाम शिवादेवी था। पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य का श्री समुद्रविजय महाराज धर्मनीति से संचालन करते थे। छोटे भाई वसुदेव की रोहिणी से बलभद्र एवं देवकी रानी से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

जब जयंत विमान के इन्द्र की आयु छह मास की शेष रह गई तब काश्यपगोत्री, हरिवंश शिखामणि राजा समुद्रविजय की रानी शिवादेवी के आंगन में देवों द्वारा की गई रत्नों की वर्षा होने लगी। कार्तिक शुक्लाषष्ठी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में वह अहमिंद्र का जीव रानी के गर्भ में आ गया।

अनंतर नवमास के बाद श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन चित्रा नक्षत्र में ब्रह्मयोग के समय तीन ज्ञान के धारक भगवान का जन्म हुआ। इंद्रादि देवों ने जन्मोत्सव मनाकर तीर्थंकर शिशु का 'नेमिनाथ' नामकरण किया। भगवान नमिनाथ के बाद पाँच लाख वर्ष बीत जाने पर नेमिजिनेन्द्र उत्पन्न हुये हैं। उनकी आयु एक हजार वर्ष की

थी, शरीर दश धनुष ऊँचा था। प्रभु के शरीर का वर्ण नील कमल के सदृश होते हुये भी इतना सुन्दर था कि इंद्र ने एक हजार नेत्र बना लिये फिर भी रूप को देखते हुये तृप्त नहीं हुआ था।

हरिवंश पुराण में नेमिनाथ तीर्थंकर का जन्म सौर्यपुर में ही माना है। पश्चात् देवों द्वारा रची गई द्वारावती नगरी में श्री कृष्ण आदि के जाने की बात कही है।

कारणवश श्रीकृष्ण तथा होनहार श्री नेमिनाथ तीर्थंकर के पुण्य प्रभाव से इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर ने एक सुन्दर 'द्वारावती' नामक नगरी की रचना की।

भगवान देवों द्वारा आनीत दिव्य भोगसामग्री का अनुभव करते हुये चिरकाल तक द्वारावती में रहे। किसी एक दिन मगध देश के कुछ व्यापारी उस नगरी में आ गये और वहाँ से श्रेष्ठरत्न खरीद कर अपने देश में ले गये तथा अर्धचक्री (प्रतिनारायण) राजा जरासंध को रत्न भेंट किये। राजा ने उन रत्नों को देखकर महान आश्चर्य चकित होकर उनसे पूछा कि आप ये रत्न कहाँ से लाये हो? उत्तर में उन लोगों ने श्रीकृष्ण और भगवान नेमिनाथ के वैभव का वर्णन कर दिया। यह सुनते ही जरासंध कुपित होकर युद्ध करने को तैयार हो गया।

'शत्रु चढ़कर आ गया है' यह समाचार सुनकर श्री कृष्ण को जरा भी चिंता नहीं हुई। वे भगवान नेमिनाथ के पास गये और बोले कि आप इस नगर की रक्षा कीजिये। सुना है कि राजा जरासंध हम लोगों को जीतना चाहता है सो मैं उसे आपके प्रभाव से घुने हुये जीर्णवृक्ष के समान शीघ्र ही नष्ट किये देता हूँ। श्रीकृष्ण के वचन सुनकर प्रभु ने अपने आप अवधिज्ञान से विजय को निश्चित जानकर मुसकुराते हुये 'ओम्- शब्द कह दिया अर्थात् अपनी स्वीकृति दे दी। श्रीकृष्ण भी प्रभु की मुस्कान से अपनी विजय को

निश्चित समझकर समस्त यादव और पांडव आदिकों के साथ कुरुक्षेत्र में आ गये।

इस भयंकर युद्ध में राजा जरासंध ने कुपित होकर चक्र श्रीकृष्ण पर चला दिया। वह चक्करत्न भी श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा देकर उनकी दाहिनी भुजा पर ठहर गया बस क्या था श्रीकृष्ण ने उसी चक्र से जरासंध का काम समाप्त कर दिया और तत्क्षण ही देवों द्वारा पूजा को प्राप्त हुए। अर्धचक्री (नारायण) हो गये। अनंतर बड़े हर्ष से इन लोगों ने द्वारावती में प्रवेश किया और वहाँ पर राज्याभिषेक को प्राप्त हुए।

''किसी एक दिन कुबेर द्वारा भेजे हुए वस्त्राभरणों से अलंकृत युवा श्री नेमिकुमार, बलदेव तथा नारायण आदि कोटि-कोटि यादवों से भरी हुई कुसुम-चित्रा नाम की सभा में गये। राजाओं ने अपने-अपने आसन छोड़ प्रभु के सन्मुख आकर उन्हें नमस्कार किया। श्रीकृष्ण ने भी आकर उनकी अगवानी की। तदनंतर श्रीकृष्ण के साथ वे उनके आसन को अलंकृत करने लगे।

वहाँ वार्तालाप के प्रसंग में बलवानों की गणना छिड़ने पर किसी ने अर्जुन को, किसी ने युधिष्ठिर को इत्यादि रूप से किसी ने श्रीकृष्ण को अत्यधिक बलशाली कहा। तरह-तरह की वाणी सुनकर बलदेव ने लीलापूर्ण दृष्टि से भगवान की ओर देखकर कहा कि तीनों जगत में इनके समान दूसरा बलवान् नहीं है, ये गिरिराज को अनायास ही कंपायमान कर सकते हैं यथार्थ में ये जिनेंद्र हैं इनसे उत्कृष्ट दूसरा कौन हो सकता है?

इस प्रकार वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने भगवान से कहा—भगवन्! यदि आपके शरीर का ऐसा उत्कृष्ट बल है तो बाहुयुद्ध में उसकी परीक्षा क्यों न ली जाये? भगवान ने कहा—हे अग्रज! यदि आपको मेरी भुजाओं का बल जानना ही है तो मल्लयुद्ध की क्या आवश्यकता

है? सहसा इस आसन से मेरे इस पैर को ही विचलित कर दीजिये। श्रीकृष्ण उसी समय कमर कसकर जिनेंद्र भगवान को जीतने की इच्छा से उठ खड़े हुए, परन्तु पैर का चलाना तो दूर ही रहा वे एक अंगुली को भी नहीं हिला सके। उसी समय इन्द्र का आसन कंपित होने से देवों सहित इन्द्र ने आकर भगवान की अनेकों स्तुतियों से स्तुति और पूजा की। तदनंतर सब अपने-अपने महलों में चले गये।

नेमिनाथ का वैराग्य—

किसी समय मनोहर नामक उद्यान में भगवान नेमिनाथ तथा सत्यभामा आदि जलकेलि कर रहे थे। स्नान के अनंतर श्री नेमिनाथ ने सत्यभामा से कहा—हे नीलकमल के समान नेत्रों वाली! तू मेरा यह स्नान का वस्त्र ले। सत्यभामा ने कहा, मैं इसका क्या करूँ? नेमिनाथ ने कहा कि तू इसे धो डाल। तब सत्यभामा कहने लगी क्या आप श्रीकृष्ण हैं? वह श्रीकृष्ण, जिन्होंने कि नागशय्या पर चढ़कर शार्ङ्ग नाम का धनुष अनायास ही चढ़ा दिया था और दिग्दिगंत को व्याप्त करने वाला शंख पूरा था? क्या आपमें यह साहस है? यदि नहीं तो आप मुझसे वस्त्र धोने की बात क्यों करते हैं?

नेमिनाथ ने कहा कि 'मैं यह कार्य अच्छी तरह कर दूँगा' इतना कहकर वे गर्व से प्रेरित हो आयुधशाला में पहुँच गये। वहाँ नागराज के महामणियों से सुशोभित नागशय्या पर अपनी ही शय्या के समान चढ़ गये और शार्ङ्ग धनुष चढ़ाकर समस्त दिशाओं के अंतराल को रोकने वाला शंख फूंक दिया। उस समय श्रीकृष्ण अपनी कुसुमचित्रा सभा में विराजमान थे। वे सहसा ही यह आश्चर्य पूर्ण काम सुनकर व्यग्र हो उठे। बड़े आश्चर्य से किंकरों से पूछा कि यह क्या है? किंकरों ने भी पता लगाकर सारी बात बता दी।

उस समय अर्ध चक्री श्रीकृष्ण ने विचार करते हुये कहा कि आश्चर्य है, बहुत समय बाद कुमार नेमिनाथ का चित्त राग से युक्त

हुआ है। अब इनका विवाह करना चाहिए। वे शीघ्र ही राजा उग्रसेन के घर स्वयं पहुँच गये और रानी जयावती से उत्पन्न राजीमति कन्या की श्री नेमिनाथ के लिए याचना की। राजा उग्रसेन ने कहा हे देव! आप तीन खण्ड के स्वामी हैं अतः आपके सामने हम लोग कौन होते हैं? शुभ मुहूर्त में विवाह निश्चित हो गया।

तदनंतर देवों द्वारा आनीत नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित भगवान नेमिनाथ, समान वयवाले अनेक मंडलेश्वर राजपुत्रों से घिरे हुये चित्रा नाम की पालकी पर आरूढ़ होकर दिशाओं का अवलोकन करने के लिए निकले। वहाँ उन्होंने करुणस्वर से चिल्लाते हुये और इधर-उधर दौड़ते हुए, भूख, प्यास से व्याकुल हुए तथा अत्यंत भयभीत हुए, दानदृष्टि से युक्त मृगों को देख दयावश वहां के रक्षकों से पूछा कि यह पशुसमूह क्यों इकट्ठा किया गया है? नौकरों ने कह दिया कि आपके विवाह में ये मारे जायेंगे। उसी समय श्री नेमिकुमार को पशुओं के अत्याचार के प्रति करुणा जाग्रत हो गई और शीघ्र ही भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो गया और विरक्त चित्त हुए लौटकर अपने घर वापस आ गये। अपने अनेक पूर्व भवों का स्मरण कर भयभीत हो गये। अब तक प्रभु के कुमार काल के तीन सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

तत्क्षण ही लौकांतिक देवों से पूजा को प्राप्त हुए प्रभु को देवों ने देवकुरु नाम की पालकी पर बिठाया और सहस्राम्र वन में ले गये। श्रावण कृष्ण षष्ठी के दिन सायंकाल के समय तेला का नियम लेकर एक हजार राजाओं के साथ जैनेश्वरी दीक्षा से विभूषित हो गये। उसी समय उन्हें चौथा मनःपर्यय ज्ञान प्रगट हो गया।

राजीमती ने भी प्रभु के पीछे तपश्चरण करने का निश्चय कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि शरीर की बात तो दूर ही रही, वचनमात्र से भी दी हुई कुलस्त्रियों का यही न्याय है।

पारणा के दिन द्वारावती नगरी में राजा वरदत्त ने पड़गाहन करके प्रभु को आहार दिया जिसके फलस्वरूप पंचाश्चर्य को प्राप्त हो गये अर्थात् देवों ने साढ़े बारह करोड़ रत्न बर्साये। पुष्प वृष्टि, मन्द सुगन्ध वायु, दुन्दुभी बाजे और अहोदानं आदि प्रशंसा वाक्य होने लगे।

इस प्रकार तपश्चर्या करते हुये प्रभु के छद्मस्थ अवस्था के छप्पन दिन व्यतीत हो गये तब वे रैवतक पर्वत पर पहुँचे, तेला का नियम लेकर किसी बड़े भारी बाँस वृक्ष के नीचे विराजमान हो गये। आश्विन कृष्ण प्रतिपदा के दिन चित्रा नक्षत्र में प्रातः काल के समय प्रभु को लोकालोकप्रकाशी केवलज्ञान प्रकट हो गया। उनके समवसरण में वरदत्त को आदि लेकर ग्यारह गणधर थे, अठारह हजार मुनि, राजीमती आदि चालीस हजार आर्यिकाएं, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएं थीं। भगवान की सभा में बलभद्र और श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष आये। धर्म का स्वरूप सुना और अपने सभी भव-भवांतर पूछे।

किसी समय भगवान की दिव्यध्वनि से यह बात मालूम हुई कि 'द्वीपायन मुनि के क्रोध के निमित्त से इस द्वारावती नगरी का विनाश होगा' इस भावी दुर्घटना को सुनकर कितने ही महापुरुषों ने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली थी। इस प्रकार प्रभु नेमिनाथ ने छह सौ निन्यानवे वर्ष, नौ महीना और चार दिन तक विहार किया था।

अनन्तर गिरनार पर्वत पर आकर विहार छोड़कर पाँच सौ तेतीस मुनियों के साथ एक महीने का योग निरोध करके आषाढ़ शुक्ला सप्तमी के दिन चित्रा नक्षत्र में रात्रि के प्रारम्भ में ही प्रभु ने अघातिया कर्मों का नाश कर मोक्ष पद प्राप्त कर लिया। उसी समय इंद्रादि देवों ने आकर बड़ी भक्ति से प्रभु का परिनिर्वाण कल्याणक महोत्सव मनाया। वे श्री नेमिनाथ भगवान हमारे अंतःकरण को पूर्णशांति प्रदान करें।

२३. तीर्थंकर पार्श्वनाथ

इसी जम्बूद्वीप के दक्षिण भरत क्षेत्र में एक सुरम्य नाम का बड़ा भारी देश है। उसके पोदनपुर नगर में अतिशय धर्मात्मा अरविन्द राजा राज्य करते थे। उसी नगर में विश्वभूति ब्राह्मण की अनुन्धरी ब्राह्मणी से उत्पन्न हुए कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र थे जोकि क्रमशः विष और अमृत से बनाये हुए के समान मालूम पड़ते थे। कमठ की स्त्री का नाम वरुणा तथा मरुभूति की स्त्री का नाम वसुन्धरा था। ये दोनों ही राजा के मन्त्री थे।

एक समय किसी राज्यकार्य से मरुभूति बाहर गया था तब कमठ मरुभूति की स्त्री वसुन्धरा के साथ व्यभिचारी बन गया। राजा अरविंद को यह बात पता चलते ही उन्होंने उस कमठ को दण्डित करके देश से निकाल दिया। वह कमठ भी मानभंग से दुःखी होकर किसी तापस आश्रम में जाकर हाथ में पत्थर की शिला लेकर कुतप करने लगा। भाई के प्रेम के वशीभूत हो मरुभूति भी कमठ को ढूंढ़ता हुआ उधर चल पड़ा। उसे आते देख क्रोध के आवेश में आकर कमठ ने वह हाथ की शिला उसके सिर पर पटक दी जिससे मरुभूति मरकर सल्लकी वन में वज्रघोष नाम का हाथी हो गया।

किसी समय अरविन्द ने विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया और संयम धारणकर सब संघ की वंदना के लिये प्रस्थान किया। चलते-चलते वे उसी वन में पहुँचकर सामायिक के समय प्रतिमायोग से विराजमान हो गये। वह हाथी संघ में हाहाकार करता हुआ अरविन्द महाराज के सन्मुख आकर मारने के लिए दौड़ा, तत्क्षण ही उनके वक्षस्थल में वत्स के चिन्ह को देखते ही उसे पूर्व भव संबंध का स्मरण हो आया तब वह पश्चाताप से शांत होता हुआ चुपचाप खड़ा रहा। अनंतर अरविन्द मुनिराज ने उसे धर्मोपदेश देकर श्रावक के व्रत ग्रहण करा दिये।

उस समय से वह हाथी पाप से डर कर दूसरे हाथियों द्वारा तोड़ी हुई वृक्ष की शाखाओं और सूखे पत्तों को खाने लगा। पत्थरों

के गिरने से अथवा हाथियों के समूह के संघटन से जो पानी प्रासुक हो जाता था उसे ही वह पीता था तथा प्रोषधोपवास के बाद पारणा करता था। इस प्रकार चिरकाल तक महान तपश्चरण करता हुआ वह हाथी अत्यन्त दुर्बल हो गया। किसी दिन वह हाथी पानी पीने के लिए वेगवती नदी के किनारे गया और कीचड़ में गिरकर फँस गया, निकल नहीं सका। वहाँ पर दुराचारी कमठ का जीव मरकर कुक्कुट सर्प हुआ था उसने पूर्व वैर के संस्कार से उसे काट खाया जिससे वह हाथी महामंत्र का स्मरण करते हुए मरकर बारहवें स्वर्ग में देव हो गया। इधर वह सर्प पाप से मरकर तीसरे नरक चला गया।

जंबूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में पुष्कलावती देश है उसके विजयार्ध पर्वत पर त्रिलोकोत्तम नगर में राजा विद्युत्गति राज्य करते थे। वह देव का जीव वहाँ से च्युत होकर राजा की विद्युन्माला रानी से रश्मिवेग नाम का पुत्र हो गया। रश्मिवेग ने युवावस्था में समाधिगुप्त मुनिराज के पास दीक्षा लेकर महासर्वतोभद्र आदि श्रेष्ठ उपवास किये। किसी समय हिमगिरि पर्वत की गुफा में योग धारण कर विराजमान थे कि कुक्कुट सर्प का जीव जो नरक से निकल कर अजगर हुआ था उसने निगल लिया। मुनि का जीव मरकर सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ और कालांतर में अजगर मरकर छठे नरक चला गया।

जंबूद्वीप के पूर्व विदेह सम्बन्धी पद्मादेश में अश्वपुर नगर है। वहाँ के राजा वज्रवीर्य और रानी विजया के वह स्वर्ग का देव मरकर वज्रनाभि नाम का पुत्र हुआ। वह पुण्यशाली वज्रनाभि चक्रवर्ती के पद का भोक्ता हो गया, अनंतर किसी समय विरक्त होकर साम्राज्य वैभव का त्यागकर क्षेमंकर गुरु के समीप जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। कमठ का जीव, जो कि अजगर की पर्याय में मरकर छठे नरक गया था वह कुरंग नाम का भील हो गया था। किसी दिन तपस्वी चक्रवर्ती वन में आतापन योग ये विराजमान थे, उन्हें देखकर उस भील का वैर भड़क उठा, उसने मुनिराज पर भयंकर उपसर्ग किए। मुनिराज आराधनाओं की आराधना से मरण कर मध्यम ग्रैवेयक में श्रेष्ठ अहमिन्द्र हो गए तथा वह पापी भील आयु पूरी

करके पाप के भार से पुनः नरक चला गया।

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशलदेश सम्बन्धी अयोध्या नगरी में काश्यपगोत्री इक्ष्वाकुवंशी राजा वज्रबाहु राज्य करते थे। उनकी रानी प्रभंकरी थी वह अहमिन्द्र च्युत होकर रानी के गर्भ से आनंद नाम का आनंददायी पुत्र हो गया। वह बड़ा होकर मंडलेश्वर राजा हुआ। किसी दिन आनंद राजा ने महामंत्री के कहने से आष्टान्हिक महापूजा कराई जिसे देखने के लिए विपुलमति नाम के मुनिराज पधारे। आनंदराज ने उनकी वंदना पूजा आदि करके उनसे पूछा कि हे भगवन्! जिनेन्द्र प्रतिमा अचेतन है उसकी पूजा से पुण्यबंध कैसे होता है? मुनिराज ने कहा यद्यपि प्रतिमा अचेतन है तो भी महान पुण्य का कारण है जैसे चिंतामणि रत्न, कल्पवृक्ष आदि अचेतन होकर मनचिंतित और मनचाहे फल देते हैं वैसे ही प्रतिमाओं की वंदना पूजा आदि से जो शुभ परिणाम होते हैं उनसे सातिशय पुण्य बंध हो जाता है इत्यादि प्रकार से वीतराग प्रतिमा का वर्णन करते हुए मुनिराज ने राजा के सामने तीन लोक सम्बन्धी अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन करना शुरू किया। उसमें प्रारम्भ में ही सूर्य के विमान में स्थित जिनमंदिर की विभूति का अच्छी तरह वर्णन किया। उस असाधारण विभूति को सुनकर राजा आनन्द को बहुत ही श्रद्धा हो गई। उस दिन से वह प्रतिदिन हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर सूर्य विमान में स्थित जिनप्रतिमाओं की स्तुति करने लगा। उसने कारीगरों द्वारा मणि और सुवर्ण का एक सूर्य विमान बनवाकर उसके भीतर जिनमन्दिर बनवाया। अनन्तर शास्त्रोक्त विधि से आष्टान्हिक, चतुर्मुख, रथावर्त, सर्वतोभद्र और कल्पवृक्ष इन नाम वाली पूजाओं का 'अनुष्ठान' किया।

"उस राजा को इस तरह सूर्य की पूजा करते देखकर उसकी प्रामाणिकता से अन्य लोग भी स्वयं भक्तिपूर्वक सूर्यमंडल की स्तुति करने लगे। आचार्य कहते हैं कि इस लोक में उसी समय से सूर्य की उपासना चल पड़ी है।"

किसी दिन आनन्द राजा ने अपने सिर पर एक सफेद बाल

देखा तत्क्षण विरक्त होकर पुत्र को राज्य वैभव देकर समुद्रगुप्त मुनिराज के पास अनेक राजाओं के साथ दीक्षित हो गये। उन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और सोलहकारण भावनाओं के चिंतवन से तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। आयु के अंत समय वे धीर-वीर शांतमना मुनिराज प्रायोपगमन संन्यास लेकर ध्यान में लीन थे। पूर्व जन्म के कमठ का जीव नरक से निकलकर वहीं सिंह हुआ था। सो उसने आकर उन मुनि का कण्ठ पकड़ लिया। सिंहकृत उपसर्ग से विचलित नहीं होने वाले वे मुनिराज मरणकर अच्युत (सोलहवें) स्वर्ग के प्राणत नामक विमान में इन्द्र हो गए। वहाँ पर उनकी आयु बीस सागर की थी, साढ़े तीन हाथ ऊँचा शरीर था। वे वहाँ दिव्य सुखों का अनुभव कर रहे थे। उधर सिंह का जीव भी आयु पूरी करके मरकर नरक चला गया और वहाँ के भयंकर दुःखों का चिरकाल तक अनुभव करता रहा।

गर्भावतार—

इस जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी काशी देश में बनारस नाम का एक नगर है। उसमें काश्यप गोत्री राजा विश्वसेन राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम ब्राह्मी था। जब उन सोलहवें स्वर्ग के इन्द्र की आयु छह मास की अवशेष रह गई थी तब इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने माता के आँगन में रत्नों की धारा बरसाना शुरू कर दी थी। रानी ब्राह्मी ने सोलहस्वप्नपूर्वक वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन इन्द्र के जीव को गर्भ में धारण किया था।

नवमास पूर्ण होने पर पौष कृष्णा एकादशी के दिन पुत्र का जन्म हुआ था। इन्द्रादि देवों ने सुमेरु पर्वत पर ले जाकर तीर्थंकर शिशु का जन्माभिषेक करके 'पार्श्वनाथ' यह नामकरण किया था। श्री नेमिनाथ के बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जाने पर इनका जन्म हुआ था। इनकी आयु सौ वर्ष की थी जोकि इसी अंतराल में सम्मिलित है। प्रभु की कांति हरितवर्ण की एवं शरीर की ऊँचाई नौ हाथ प्रमाण थी। ये उग्रवंशी थे।

सोलह वर्ष बाद नवयौवन से युक्त भगवान किसी समय क्रीडा

के लिये अपनी सेना के साथ नगर के बाहर गये। कमठ का जीव जो कि सिंह पर्याय से नरक गया था वह वहाँ से आकर महीपाल नगर का महीपाल नाम का राजा हुआ था। उसी की पुत्री ब्राह्मी (वामा देवी) भगवान पार्श्वनाथ की माता थीं। यह राजा (भगवान के नाना) किसी समय अपनी पत्नी के वियोग में तपस्वी होकर वहीं आश्रम के पास वन में पंचाग्नियों के बीच में बैठा तपश्चरण कर रहा था। देवों द्वारा पूज्य भगवान उसके पास जाकर उसे नमस्कार किये बिना ही खड़े हो गये। यह देखकर वह खोटा साधु क्रोध से युक्त हो गया और सोचने लगा "मैं कुलीन हूँ, तपोवृद्ध हूँ और इसका नाना हूँ" फिर भी इस अज्ञानी कुमार ने अहंकारवश मुझे नमस्कार नहीं किया है, क्षुभित हो उसने अग्नि में लकड़ियों को डालने के लिए पड़ी हुई लकड़ी को काटने हेतु अपना फरसा उठाया, इतने में ही अवधिज्ञानी भगवान पार्श्वनाथ ने कहा, "इसे मत काटो" इसमें जीव हैं किन्तु मना करने पर भी उसने लकड़ी काट ही डाली, तत्क्षण ही उसके भीतर रहने वाले सर्प और सर्पिणी निकल पड़े और घायल हो जाने से छटपटाने लगे।

यह देखकर प्रभु के साथ स्थित सुभौमकुमार ने कहा कि तू अहंकारवश यह कुतप करके ताप का ही आस्रव कर रहा है। सुभौम के वचन सुन तपस्वी क्रुधित होकर अपने तपश्चरण की महत्ता प्रकट करने लगा। तब सुभौमकुमार ने अनेक युक्तियों से उसे समझाया कि सच्चे देव, शास्त्र और गुरु के सिवाय कोई हितकारी नहीं है। जिनधर्म में प्रणीत सच्चे तपश्चरण से ही कर्म निर्जरा होती है। यह मिथ्यातप, जीव हिंसा सहित होने से कुतप ही है। यद्यपि वह तापसी समझ तो गया किन्तु पूर्व बैर का संस्कार होने से अपने पक्ष के अनुराग से अथवा दुःखमय संसार के कारण से अथवा स्वभाव से ही दुष्ट होने से उसने स्वीकार नहीं किया प्रत्युत् यह सुभौमकुमार अहंकारी होकर मेरा तिरस्कार कर रहा है ऐसा समझ वह भगवान पार्श्वनाथ पर अधिक क्रोध करने लगा। इसी शल्य से मरकर 'शम्बर' नाम का ज्योतिषी देव हो गया।

इधर सर्प और सर्पिणी कुमार के उपदेश से शांतभाव को प्राप्त हुए तथा मरकर बड़े ही वैभवशाली धरणेन्द्र और पद्मावती हो गये।

अनंतर भगवान जब तीस वर्ष के हो गये तब एक दिन अयोध्या के राजा जयसेन ने उत्तम घोड़ा आदि की भेंट के साथ अपना दूत भगवान पार्श्वनाथ के समीप भेजा। भगवान ने भेंट लेकर उस दूत से अयोध्या की विभूति पूछी। उत्तर में दूत ने सबसे पहले भगवान ऋषभदेव का वर्णन किया पश्चात् अयोध्या का हाल कहा। उसी समय ऋषभदेव के सदृश अपने को तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ है, ऐसा सोचते हुए भगवान गृहवास से पूर्ण विरक्त हो गये और लौकांतिक देवों द्वारा पूजा को प्राप्त हुए। प्रभु देवों द्वारा लाई गई विमला नाम की पालकी पर बैठकर अश्ववन में पहुँच गये। वहाँ तेला का नियम लेकर पौष कृष्णा एकादशी के दिन प्रातः काल के समय सिद्ध भगवान को नमस्कार करके प्रभु तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षित हो गये।

पारणा के दिन गुल्मखेट नगर के धन्य नामक राजा ने अष्ट मंगलद्रव्यों से प्रभु का पड़गाहन कर आहारदान देकर पंचाश्चर्य प्राप्त कर लिये। छद्मस्थ अवस्था के चार मास व्यतीत हो जाने पर भगवान अश्ववन नामक दीक्षावन में पहुँचकर देवदारु वृक्ष के नीचे विराजमान होकर ध्यान में लीन हो गये। इसी समय कमठ का जीव शम्बर ज्योतिषी आकाशमार्ग से जा रहा था, अकस्मात् उसका विमान रुक गया, उसे विभंगावधि से पूर्व का बैर बंध स्पष्ट दिखने लगा। फिर क्या था, क्रोधवश उसने महागर्जना, महावृष्टि, भयंकर वायु आदि से महा उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया, बड़े बड़े पहाड़ तक लाकर समीप में गिराये, इस प्रकार उसने सात दिन तक लगातार भयंकर उपसर्ग किया।

अवधिज्ञान से यह उपसर्ग जानकर धरणेन्द्र अपनी भार्या पद्मावती के साथ पृथ्वी तल से बाहर निकला। धरणेन्द्र ने भगवान को सब ओर से घेर कर अपने फणाओं के ऊपर उठा लिया और उस की पत्नी वज्रमय छत्र तान कर खड़ी हो गई। आचार्य कहते हैं

देखो! स्वभाव से ही क्रूर प्राणी इन सर्प सर्पिणी ने अपने ऊपर किये गये उपकार को याद रखा सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन पुरुष अपने ऊपर किये हुए उपकार को कभी नहीं भूलते हैं।

तदनंतर ध्यान के प्रभाव से प्रभु का मोहनीय कर्म क्षीण हो गया इसलिए बैरी कमठ का सब उपसर्ग दूर हो गया। मुनिराज पार्श्वनाथ ने चैत्र कृष्णा चतुर्थी के दिन प्रातःकाल के समय विशाखा नक्षत्र में लोकालोकप्रकाशी केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। उसी समय इन्द्रों ने आकर समवसरण की रचना करके केवलज्ञान की पूजा की। शंबर नाम का देव भी का काललब्धि पाकर उसी समय शांत हो गया और उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। यह देख, उस वन में रहने वाले सात सौ तपस्वियों ने मिथ्यादर्शन छोड़कर संयम धारण कर लिया, सभी शुद्ध सम्यग्दृष्टि हो गये और बड़े आदर से प्रदक्षिणा देकर भगवान की स्तुति भक्ति की। आचार्य कहते हैं कि पापी कमठ के जीव का कहां तो निष्कारण वैर और कहां ऐसी पार्श्वनाथ की शांति! इसलिए संसार के दुःखों से भयभीत प्राणियों को वैर विरोध का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

भगवान पार्श्वनाथ के समवसरण में स्वयंभू को आदि लेकर दस गणधर थे, सोलह हजार मुनिराज, सुलोचना को आदि लेकर छत्तीस हजार आर्यिकायें, एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें थीं। इस प्रकार बारह सभाओं को धर्मोपदेश देते हुए भगवान ने पाँच मास कम सत्तर वर्ष तक विहार किया। अंत में आयु का एक माह शेष रहने पर विहार बंद हो गया। प्रभु पार्श्वनाथ सम्मेदाचल के शिखर पर छत्तीस मुनियों के साथ प्रतिमायोग से विराजमान हो गये। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रातःकाल के समय विशाखा नक्षत्र में सिद्धपद को प्राप्त हो गये। इन्द्रों ने आकर मोक्ष कल्याणक उत्सव मनाया। ऐसे पार्श्वनाथ भगवान हमें भी सम्पूर्ण प्रकार के उपसर्गों को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

'भगवान महावीर के पूर्वभव'

पुरुरवा भील—

इस जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी के उत्तर किनारे पर 'पुष्कलावती' नाम का देश है। उसकी 'पुण्डरीकिणी' नगरी में एक 'मधु' नाम का वन है। उसमें 'पुरुरवा' नाम का एक भीलों का राजा अपनी 'कालिका' नाम की स्त्री के साथ रहता था[1]। किसी दिन दिग्भ्रम के कारण 'श्री सागरसेन' नामक मुनिराज को इधर-उधर भ्रमण करते हुये देखकर यह भील उन्हें मारने को उद्यत हुआ उसकी स्त्री ने यह कहकर मना कर दिया कि 'ये वन के देवता घूम रहे हैं इन्हें मत मारो।' वह पुरुरवा उसी समय मुनि को नमस्कार कर तथा उनके वचन सुनकर शांत हो गया। मुनिराज ने उससे मद्य, मांस और मधु इन तीन मकारों का त्याग करा दिया। मांसाहारी भील भी इन तीनों के त्यागरूप व्रत का जीवनपर्यन्त पालन कर आयु के अंत में मरकर सौधर्म स्वर्ग में एक सागर की आयु को धारण करने वाला देव हो गया कहाँ तो वह हिंसक क्रूर भील पाप करके नरक चला जाता और कहाँ उसे गुरु का समागम मिला कि जिनसे हिंसा का त्याग करके स्वर्ग चला गया।

मरीचि कुमार—

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखंड के मध्य भाग में कौशल नाम का देश है। इस देश के मध्य भाग में अयोध्या नगरी है। वहां ऋषभदेव भगवान् के ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती की अनंतमती रानी से 'यह पुरुरवा भील का जीव देव' मरीचि कुमार नाम का पुत्र हुआ। अपने बाबा भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा के समय स्वयं ही गुरु भक्ति से प्रेरित होकर मरीचि ने कच्छ आदि चार हजार राजाओं के साथ दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। भगवान् तो छह महीने का उपवास लेकर ध्यान में लीन हो गये। मरीचि आदि

१. भगवान ऋषभदेव के जन्म के पूर्व इसी आर्यखंड में भोगभूमि की व्यवस्था थी। उस विदेह क्षेत्र की यह घटना है।

चार हजार राजा स्वयं ही फल, आवरण आदि को ग्रहण करने लगे तब वनदेवता ने प्रगट होकर कहा— "निर्ग्रंथ दिगंबर—जिनमुद्रा को धारण करने वालों का यह क्रम नहीं है अर्थात् यह अर्हंतमुद्रा तीनों लोकों में पूज्य है इसको धारण कर यह स्वच्छंद प्रवृत्ति करना कथमपि उचित नहीं है अतः तुम लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार अन्य वेष ग्रहण कर लो।"

ऐसा सुनकर प्रबल मिथ्यात्व से प्रेरित हुये मरीचि ने भी सबसे पहले परिव्राजक की दीक्षा धारण कर ली। वास्तव में जिनका संसार दीर्घ होता है उनके लिये यह मिथ्यात्व कर्म मिथ्यामार्ग ही दिखलाता है। उस समय उसे उन सब विषयों का ज्ञान भी स्वयं ही प्रगट हो गया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनों के समान दुर्जनों को भी अपने विषय का ज्ञान स्वयं ही हो जाता है। उसने तीर्थंकर भगवान के वचन सुनकर भी समीचीन धर्म ग्रहण नहीं किया था। वह मरीचि साधु सोचता रहता था कि जिस प्रकार भगवान ऋषभदेव ने अपने आप समस्त परिग्रहों कर त्याग कर तीनों लोकों में क्षोभ उत्पन्न करने वाली सामर्थ्य प्राप्त की है उसी प्रकार मैं भी संसार में अपने द्वारा चलाये हुये दूसरे मत की व्यवस्था करूंगा और उसके मिमित्त से होने वाले बड़े भारी प्रभाव के कारण इन्द्र की प्रतीक्षा को प्राप्त करूंगा— इन्द्र द्वारा की हुई पूजा को प्राप्त करूंगा। मैं समझता हूं कि मेरे यह सब अवश्य होगा। इस प्रकार मान कर्म के उदय से वह पापबुद्धि सहित हुआ खोटे मत से विरक्त नहीं हुआ और अनेक दोषों से दूषित वही वेष धारण कर रहने लगा।

तभी कच्छ आदि चार हजार राजा जो दीक्षित हुये उन सभी मुनिवेषधारियों ने भी अनेक वेष बना लिये।

मरीचि का भवभ्रमण—

मरीचिकुमार आयु के अंत में मरकर ब्रह्मस्वर्ग में दस सागर आयु वाला देव हो गया। वहाँ से आकर जटिल ब्राह्मण हुआ पुनः पारिव्राजक बना पुनः मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ पुनः वहां से

आकर अग्निसह ब्राह्मण होकर पारिव्राजक दीक्षा ले ली पुनः मरकर देव हुआ, वहां से च्युत होकर अग्निमित्र ब्राह्मण होकर पारिव्राजक तापसी हुआ। पुनरपि माहेन्द्र स्वर्ग में देव हुआ, वँहासे आकर भारद्वाज ब्राह्मण होकर त्रिदण्डी साधु बन गया और पुनरपि स्वर्ग में गया। वहां से च्युत होकर मिथ्यात्व के निमित्त से यह मरीचि कुमार त्रस-स्थावार योनियों में असंख्यात वर्ष तक परिभ्रमण करता रहा।

वह मरीचि कुमार का जीव इस तरह असंख्यात वर्षों तक इन कुयोनियों में भ्रमण करते हुये श्रांत हो गया। कुछ पुण्य से राजगृह नगर के शांडिल्य ब्राह्मण की पारशरी पत्नी से 'स्थावर' नाम का पुत्र हुआ। वहां भी सम्यग्दर्शन से शून्य पारिव्राजक की दीक्षा लेकर अंत में मरकर माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु वाला देव हो गया।

विश्वनंदी—

इसी मगधदेश के राजगृह नगर में 'विश्वभूति' राजा की 'जैनी' नामकी रानी से यह मरीचि कुमार का जीव स्वर्ग से आकर 'विश्वनंदी' नाम का राजपुत्र हो गया। विश्वभूति राजा का एक विशाखभूति नाम का छोटा भाई था, उसकी लक्ष्मणा पत्नी से 'विशाखनन्दि' नाम का मूर्ख पुत्र हो गया। किसी दिन विश्वभूति राजा ने विरक्त होकर छोटे भाई विशाखभूति को राज्य देकर अपने पुत्र 'विश्वनन्दि' को युवराज बना दिया और स्वयं तीन सौ राजाओं के साथ श्रीधर मुनि के पास दीक्षित हो गये।

किसी दिन विश्वनंदी युवराज अपने 'मनोहर' नामक उद्यान में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उसे देख, चाचा के पुत्र विशाखनंदी ने अपने पिता के पास जाकर उस उद्यान की याचना की। विशाखभूति ने भी युवराज विश्वनंदी को 'विरुद्ध राजाओं को जीतने के बहाने' बाहर भेजकर पुत्र को बगीचा दे दिया। विश्वनंदी को इस घटना का तत्काल पता लग जाने से वह क्रुद्ध होकर वापस विशाखनंदी को मारने को उद्यत हुआ। तब विशाखनंदी कैथे के वृक्ष पर चढ़ गया, इसने कैथे के वृक्ष को उखाड़ दिया। तब वह भागा और पत्थर के खम्भे के पीछे हो गया, यह विश्वनंदी पत्थर के खंभे

को उखाड़कर उससे उसे मारने को दौड़ा। विशाखनंदी वहां से डर कर भागा तब युवराज के हृदय में सौहार्द और करुणा जाग्रत हो गयी। उसने उसी समय उसे अभयदान देकर बगीचा भी दे दिया और स्वयं 'संभूत' नामक मुनि के पास दीक्षा धारण कर ली, तब विशाखभूति ने भी पापों का पश्चाताप कर दीक्षा ले ली।

किसी दिन मुनि विश्वनंदी अत्यन्त कृश शरीरी मथुरा में आहार के लिए आये, उस समय यह विशाखनंदि वेश्या के महल की छत से मुनि को देख रहा था। मुनि को गाय ने धक्के से गिरा दिया यह देख विशाखनंदि बोला 'तुम्हारा पत्थर का खम्भा तोड़ने वाला पराक्रम कहाँ गया'? मुनि ने यह दुर्वचन सुने उन्हें क्रोध आ गया अन्त में निदान सहित संन्यास से मरकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हो गये, वहीं पर चाचा विशाखभूति भी देव हो गये। दोनों की आयु सोलह प्रमाण थी।

अर्धचक्री त्रिपृष्ठकुमार—

सुरम्य देश के पोदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से 'विशाखभूति का जीव' विजय नाम का पुत्र हुआ और महाराज की दूसरी रानी मृगावती से 'विश्वनंदी का जीव' त्रिपृष्ठ नाम का पुत्र हुआ। विजय बलभद्रपद के धारक हुये और ये त्रिपृष्ठ अर्धचक्री पद के धारक हुये। उधर विशाखनंदि का जीव चिरकाल तक संसार में भ्रमण करता हुआ कुछ पुण्य से विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के अलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलांजना रानी से 'अश्वग्रीव' पुत्र हुआ। यह प्रतिनारायण हुआ था। कालांतर में युद्ध में अश्वग्रीव के चक्ररत्न से ही अश्वग्रीव को मारकर त्रिखण्डाधिपति राजा त्रिपृष्ठ ने अपने भाई विजय के साथ बहुत काल तक राज्यलक्ष्मी का उपभोग किया, अन्त में भोगलिप्सा में मरकर सप्तम नरक में चला गया क्योंकि सम्यग्दर्शन और पांच अणुव्रतों से रहित राज्य वैभव नरक का ही कारण है।

नरक में इस मरीचि कुमार के जीव ने क्या-क्या कष्ट सहे हैं उनको असंख्य जिह्वाओं से भी नहीं कहा जा सकता? करोंत से

चीरना, कुंभी—पाक में पकाना, अग्नि में जलाना, तिल-तिल खंड करना आदि के अनेकों दुख भोगे फिर भी आयु पूर्ण हुये बिना मर नहीं सका। वहाँ पर तेंतीस सागरों की आयु भोगकर सिंह हुआ और गर्मी-सर्दी, भूख प्यास आदि बाधाओं से दुःखी हुआ, वहाँ पर प्राणी हिंसा से मांसाहार करते हुये पुनः मरकर पहले नरक चला गया। वहाँ के दुःखों को भोगकर वहाँ से निकल कर पुनरपि इसी जम्बूद्वीप में सिंधुकूट की पूर्व दिशा में हिमवान् पर्वत के शिखर पर सुन्दर बालों से युक्त सिंह हुआ।

पुण्यशाली मृगेन्द्र—

वह सिंह किसी समय एक हिरण को पकड़कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितञ्जय' और 'अमितगुण' नामक दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश मार्ग से उतर कर उस सिंह के पास पहुंचे और शिलालय पर बैठकर जोर-जोर से उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा कि 'हे भव्य मृगराज! तू अर्धचक्री त्रिपृष्ठ के भव में पांचों इन्द्रियों के विषयों का सेवन कर तृप्त नहीं हुआ तथा सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण तू नरक में चला गया, वहां अत्यन्त प्रचंड और लोहे के घनों की चोट से तेरा चूर्ण किया जाता था, इत्यादि दुःखों को भोगकर तू वहां से निकलकर सिंह हुआ पुनः हिंसा के पाप से मरकर नरक गया। वहां से निकलकर पुनः सिंह होकर हिंसा में रत है। तू ऋषभदेव के समय मरीचि के भव में तीर्थंकर ऋषभदेव के वचनों का अनादर कर त्रसस्थावर योनियों में असंख्यात वर्ष तक भ्रमण करता रहा। अब इस भव से दशवें भव में तू अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकर से सुना है। इन सब बातों को सुनते ही सिंह को जातिस्मरण हो गया। संसार के भयंकर दुःखों की स्मृति से उसका शरीर कांपने लगा तथा आंखों से अश्रु गिरने लगे। बहुत देर तक अश्रु गिरते रहने से ऐसा मालूम होता था कि मानों हृदय में सम्यक्त्व को स्थान देने की इच्छा से मिथ्यात्व ही बाहर निकल रहा है।

उसकी शांत भावना को देखकर मुनि ने उसे सम्यक्त्व और अणुव्रत ग्रहण कराये। सिंह ने मुनिराज की भक्ति से बार-बार प्रदक्षिणाएं दीं, बार-बार प्रणाम किया और तत्काल ही काललब्धि के आ जाने से तत्त्वश्रद्धानपूर्वक श्रावक के व्रत ग्रहण किये। सिंह का मांसाहार के सिवाय और कोई आहार नहीं अतः मांस का त्याग करने से उसने "निराहार व्रत" ग्रहण किया था।

सम्यग्दर्शन— सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और तत्वों का श्रद्धान करना।
अहिंसाणुव्रत— मनवचनकाय से किसी भी जीव को नहीं मारना।
सत्याणुव्रत— स्थूल झूठ नहीं बोलना।
अचौर्याणुव्रत— बिना दी हुई पर की वस्तु नहीं लेना।
ब्रह्मचर्याणुव्रत— अपनी स्त्री के सिवाय सबको माता, बहन समझना।
परिग्रह परिमाणाणुव्रत—धन-धान्य आदि परिग्रह का जीवन भर के लिए प्रमाण कर लेना।

तिर्यंचों के संयमासंयम के आगे व्रत नहीं हो सकते। इसलिए वह देशव्रती कहलाया। वह सिंह सब कुछ त्याग कर शिलातल पर बैठकर चित्रलिखित (पत्थर की मूर्ति) के समान हो गया था। चारण मुनि उसे शिक्षा देकर बार-बार उसका स्पर्श करते हुये चले गये।

महावीर चरित[1] में लिखा है कि-

'यह मरा हुआ है ऐसा समझ मदोन्मत्त हाथियों ने उसकी सटाओं को नष्ट कर दिया, डांस, मक्खी और मच्छरों ने मर्म स्थानों को काट डाला, लोमड़ी और श्रृगाल मृतक समझकर उस सिंह को तीक्ष्ण नखों के द्वारा नोंच-नोंच कर खाने लगे तो भी उस सिंह ने अपनी परम समाधि नहीं छोड़ी, क्षमा भाव से सब सहन करता रहा। पूर्वोक्त प्रकार से एक महीने तक निश्चल रहकर अनशन धारण कर पाप रहित हुआ प्राणों से शरीर को छोड़ा।' इस प्रकार सन्यास विधि से मरा और शीघ्र ही सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हो गया वहां दो सागर तक उत्तम सुख भोगे।

---

१. अशगकविकृत

सिंहकेतु देव

वह सिंह सल्लेखना विधि से मरकर सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नाम का देव हो गया। वहां उसकी आयु दो सागर प्रमाण थी। स्वर्ग में देव उपपादशय्या से सोलह वर्ष के नवयुवक के समान शरीर से परिपूर्ण होकर उठकर बैठ जाते हैं। तभी वहां वाद्यों की ध्वनि आदि से अन्य परिवार देवगण-देवांगना आदि आकर जय-जयकार करते हुये नव आगत देव का स्वागत करते हैं।

वहां देव जन्म लेकर तत्क्षण सोचते हैं कि मैं यहाँ कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ ? इत्यादि सोचते ही उन्हें भवप्रत्यय नाम के अवधिज्ञान से सभी जानकारी मिल जाती है। इन सिंहकेतु देव ने भी जान लिया कि मैं सिंह की पर्याय में दिगंबर महामुनि के संबोधन से सम्यक्त्व और अणुव्रतों को प्राप्तकर समाधिपूर्वक मरण करके यहां प्रथम स्वर्ग में देवपद को प्राप्त हुआ हूँ। अनंतर अपने परिवार देवों का अवलोकन करके वस्त्राभरणों से अलंकृत हो अपने जिनमंदिर में गया, विधिवत् अभिषेक पूजन किया। कभी-कभी देव-देवांगनाओं के साथ सभा में नानाप्रकार की चर्चा किया करता था।

कभी-कभी वह देव अपने देव परिवार एवं देवांगनाओं के साथ मध्यलोक में आकर अनेक तीर्थों की वंदना किया करता था। कभी वह सिंहकेतु देव पंचमेरुओं की वंदना करके महान पुण्य का संचय करता रहता था। कभी-कभी नंदीश्वर द्वीप में पहुंच कर बावन जिन मंदिरों की वंदना करने पहुंच जाता था।

नंदीश्वर द्वीप— मध्यलोक में सर्वप्रथम द्वीप का नाम जंबूद्वीप है एवं आठवें द्वीप का नाम नंदीश्वर द्वीप है। वहां चारों दिशाओं में एक-एक अंजनगिरि पर्वत हैं। इस अंजनगिरि के चारों तरफ एक-एक विशाल बावड़ियां हैं ये बावड़ियां चौकोन हैं। इन प्रत्येक बावड़ियों के मध्य एक-एक 'दधिमुख' पर्वत हैं। इस प्रकार चार अंजनगिरि संबंधी चार-चार दधिमुख पर्वत होने से सोलह दधिमुख माने हैं।इन बावड़ियों के बाहिरी कोनों पर दो-दो रतिकर पर्वत हैं।

ऐसे ये रतिकर बत्तीस हो गये हैं।

इस प्रकार चार अंजनगिरि, सोलह दधिमुख एवं बत्तीस रतिकर ऐसे ४+१६+३२=५२ बावन पर्वतों पर एक-एक जिन मंदिर बने हुये हैं। ये अकृत्रिम जिन मंदिर हैं।

वह सिंहकेतु देव इन मंदिरों की वंदना किया करता था। इस प्रकार दो सागर की आयु पूर्ण कर वह देव वहां से च्युत होकर मध्यलोक में आ गया।

विद्याधर राजा कनकोज्ज्वल

तदनंतर वहां से च्युत होकर धातकीखंड द्वीप के पूर्वमेरू से पूर्व की ओर जो विदेहक्षेत्र है उसके मंगलावती देश के विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में अत्यंत श्रेष्ठ 'कनकप्रभ' नगर है। वहां के राजा कनकपुंख विद्याधर और उनकी महारानी कनकमाला के कनकोज्ज्वल नाम का पुत्र हुआ। कालांतर में राजा कनकपुंख ने पुत्र को राज्यभार सौंप दिया। एक दिन राजा कनकोज्ज्वल अपनी रानी कनकवती के साथ वंदना करने के लिये मंदरगिरि-सुमेरू पर्वत पर पहुंच गये। वहां भगवंतों की प्रतिमाओं के दर्शन करके महामुनि 'श्रीप्रियमित्र' गुरू के दर्शन किये वे मुनिराज अवधिज्ञानी थे। उन विद्याधर राजा कनकोज्ज्वल ने भक्तिपूर्वक महामुनि की तीन प्रदक्षिणा देकर उन्हें नमस्कार किया और प्रश्न किया-

हे भगवन्! धर्म का स्वरूप कहिए।

महामुनि ने कहा—

धर्मो दयामयो धर्म, श्रय धर्मेण नीयसे।
मुक्ति धर्मेण कर्माणि, छिंधि धर्माय सन्मतिम्।।
देहि नापेहि धर्मात्त्वं, याहि धर्मस्य भृत्यताम्।
धर्मे तिष्ठ चिरं धर्मं, पाहि मामिति चिंतय।।

हे वत्स! धर्म दयामय है, तुम धर्म का आश्रय करो, धर्म के द्वारा ही तुम मोक्ष के निकट पहुंच सकते हो, धर्म के द्वारा तुम कर्मबंधन का छेदन करो, धर्म के लिये सद्बुद्धि दो—लगावो, धर्म से पीछे मत हटो,

धर्म की दासता स्वीकार करो, धर्म में स्थिर रहो और हे धर्म! तुम मेरी रक्षा करो। इस प्रकार धर्म का निश्चय करके सातों विभक्तियों के द्वारा धर्म का चिंतन करते रहो। ऐसा करने से तुम कुछ ही समय में—भवों में मोक्ष को प्राप्त कर लोगे।

राजा कनकोज्ज्वल मुनिराज से धर्मरूपी रसायन का पान कर ऐसे संतुष्ट हुये जैसे कि प्यासा मनुष्य जल पाकर संतुष्ट होता है। राजा ने उसी क्षण भोगों से विरक्त हो वैराग्य भावना का चिंतन किया और समस्त परिग्रह का त्याग कर गुरु देव से दीक्षा ग्रहण कर ली।

बहुत दिनों तक अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हुये विहार किया। कभी वे वनों में आत्मा का ध्यान करते थे। कभी आतापन योग से स्थित हो संसार, शरीर और भोगों की असारता का चिंतन करते हुये चिच्चैतन्य स्वरूप आत्मा का चिंतन करते थे। कभी जिनमंदिरों में जाकर भगवंतों की वंदना करके नाना प्रकार की स्तुति करते हुये महान पुण्य का संचय किया करते थे।

इस प्रकार संयम की साधना करते हुये आयु के अंत में संन्यास विधि से मरण करके संयम के प्रभाव से सातवें स्वर्ग में देव हो गये।

सातवें स्वर्ग में देव

वहां देव उपपादशय्या से उठकर बैठकर अवधिज्ञान को प्राप्त करके चिंतन करने लगे—

मैंने जैनेश्वरी दीक्षा लेकर जो संयम धारण किया था उसी के फलस्वरूप यह देवों का वैभव प्राप्त किया है। अतः धर्म के फल का चिंतन करते हुये सर्वप्रथम भगवान के मंदिर में जाकर भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा की। अनंतर अपने देवपरिवार के बीच में बैठकर सभासदों में चर्चा करते थे। कभी-कभी अप्सराओं के नृत्य को देखते हुये देवों के सुखों का अनुभव करते थे।

कभी-कभी मध्यलोक में आकर भगवान के समवसरण में पहुंचकर भगवान की स्तुति-वंदना करके कल्पवासी देवों की सभा में बैठ गये। भगवान की दिव्यध्वनि सुनकर संतुष्ट हुये पुनः अपने

पूर्वभवों को तथा अग्रिम भवों को पूछने लगे। भगवान की दिव्यध्वनि से अपने आगे के भवों को सुनकर अतीव प्रसन्न हुये कि मैं अब सातभवों के बाद नियम से संसार के दुःखों से छुटकारा प्राप्त कर लूंगा।

कभी-कभी ये देव समवसरण के वैभव को देखकर चिंतन किया करते थे कि सचमुच में एक दिन भरतक्षेत्र के अंतिम तीर्थंकर के रूप में मेरा भी समवसरण देवों द्वारा बनाया जावेगा यह सब पुण्य की ही महिमा है।

कभी-कभी ये देव स्वर्ग में ही अपने नंदनवन में देव-देवांगनाओं के साथ जलक्रीड़ा, गीत, संगीत, नृत्य आदि करते हुये आमोद-प्रमोद में समययापन करते थे।

कभी तत्त्वचर्चा में निमग्न होते थे तो कभी अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना करते हुये महान पुण्य का संचय करते थे।

पुनः पुनः मध्यलोक में आकर भगवान के समवसरण में नाना प्रकार के प्रश्नों से बारहगणों के भव्यों को भी संतुष्ट कर रहे थे। प्रश्नों के उत्तर में श्रीगणधर देव कहते थे-

भव्यात्माओं! सुनो, यह अहिंसा प्रधान धर्म चार प्रकार का है। जीवदया, रत्नत्रय, वस्तुस्वभाव और दशलक्षणस्वरूप। प्राणी मात्र के प्रति करुणा भावना, संकल्पीहिंसा का त्याग या पूर्णरूपेण त्रस, स्थावर स्वरूप षट्काय के जीवों की हिंसा का त्याग करना 'अहिंसा धर्म-जीवदया धर्म है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रस्वरूप रत्नत्रय को स्वीकारना रत्नत्रय धर्म है।

जीवका स्वरूप ज्ञानदर्शनमय है, पुद्गल का स्वभाव अचेतन—जड़ है। इत्यादि प्रकार से द्रव्यों के स्वरूप का चिंतन करना, अनेकांत स्वरूप वस्तु का चिंतन करना वस्तु स्वभाव धर्म है।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ये दशधर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं। श्रावक इन धर्मों का एकदेश पालन करते हैं और साधुगण इन्हें पूर्णरूप से पालन

करते हुये उसी भव से या दो चार भवों से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार वहां सातवें-लांतव नामक स्वर्ग में तेरह सागर की आयु प्रमाण सुखों का अनुभव कर अंत में समाधिपूर्वक प्राणों को छोड़कर इस मध्यलोक में अवतीर्ण हो गये।

राजा हरिषेण

इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में कौशल देश है। उसकी राजधानी साकेतपुरी—अयोध्या में राजा वज्रसेन की रानी शीलवती थीं। सातवें स्वर्ग सेच्युत होकर उस देव का जीव रानी शीलवती के गर्भ में आ गया। रानी ने उत्तम-उत्तम दोहले प्राप्त किये। नव माह के बाद पुत्र का जन्म होते ही राजा ने पूरे शहर में उत्सव मनाया। पुत्र का नाम 'हरिषेण' रखा। बाल्य क्रीड़ाओं के द्वारा माता-पिता आदि परिवार के जनों को हर्षित करते हुये जहां राजमहल में आनंद की वृद्धि कर रहे थे वहीं पूरी अयोध्या के नागरिकों के आनंद समुद्र को बढ़ा रहे थे। युवावस्था में राजा वज्रसेन ने अपने पुत्र को राज्य सौंप दिया।

कभी-कभी ये राजा हरिषेण अपनी राज्यसभा में नर्तकियों का नृत्य आदि देखते हुये आनंद विभोर हो जाते थे। कभी-कभी धर्मानुष्ठानों से प्रजा को धर्म में लगाकर आनंद का अनुभव करते थे। एक बार विरक्त होकर सारहीन माला के समान समस्त राज्यलक्ष्मी का त्याग कर दिया तथा उत्तम व्रत और शास्त्रज्ञान से सुशोभित श्री श्रुतसागर महामुनि के पास जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा के समय उनके गुरु ने 'शिष्य हरिषेण' के मस्तक पर विधिवत् मंत्रों से अट्ठाईस मूलगुणों के संस्कार किये थे। दीक्षा के अनंतर कुछ समय गुरु के निकट रहकर पश्चात् गुरु की आज्ञा से जिनकल्पी एकलविहारी महामुनि बन गये।

तब ये हरिषेण मुनिराज पर्वतों की चोटी पर बैठकर ध्यान करते थे। गर्मी के दिनों में पर्वत की चोटी पर ध्यान करना आतापन योग है। वर्षाऋतु में वृक्षों के नीचे ध्यान लगाकर बैठ जाना एवं

शीतऋतु में खुले मैदान में ध्यान करना यह त्रिकाल योग कहलाता है। कहा भी है -

गिम्हे गिरिसिहरत्था वरिसायाले रूक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे बाहिरसयणा ते साहू वंदिमो णिच्चं।।

ग्रीष्मकाल में पर्वत के शिखर पर स्थित होकर, वर्षाकाल में रात्रि में वृक्षों के नीचे बैठकर एवं शीतकाल में खुले मैदान में स्थित होकर जो तपस्या करते हैं ऐसे साधुओं की हम नित्य ही वंदना करते हैं।

कभी-कभी ये महामुनि उद्यान में आये हुये शिष्य समूह के लिये धर्म का उपदेश दिया करते थे। यह धर्मामृत की वर्षा सच्चे साधु ही कर सकते हैं। आज कल इस पंचमकाल में यहां इस भरतक्षेत्र में ऐसे सत्यधर्म के उपदेशक मुनि बहुत ही दुर्लभ हैं। कहा भी है-

कलिप्रावृड् मिथ्यादिङ्मेघच्छन्नासु दिक्ष्विह।
खद्योतवत् सुदेष्टारो हा द्योतन्ते क्वचित्-क्वचित्।।

इस कलिकाल रूपी वर्षाकाल में चारों तरफ से मिथ्यात्व के बादल छाये हुये हैं। ऐसे समय में सच्चे धर्म के उपदेष्टा जुगुनू के समान कहीं-कहीं ही चमकते हैं। यह बड़े खेद की बात है।

किंतु महामुनि हरिषेण तो चतुर्थकाल में एक महान साधु हुये हैं। इन्होंने व्रतों की विशुद्धि को बढ़ाते हुये अंत में समाधिपूर्वक शरीर को छोड़ा और महाशुक्र नाम के दसवें स्वर्ग में देवपद को प्राप्त हो गये।

दसवें स्वर्ग में देव

वहां पर महाशुक्र स्वर्ग में हरिषेणचर देव अपनी देवांगनाओं और देवपरिवार के साथ अनेक दिव्यसुखों का अनुभव करते रहते थे। कभी-कभी वे मध्यलोक में संयम की मूर्ति महामुनियों के दर्शनार्थ आ जाते थे, यहां आकर मुनियों की वंदना, भक्ति करके उनके प्रवचन सुनते थे, अनेक प्रकार के प्रश्नों से जिनधर्म का विशेष ज्ञान प्राप्त करते थे। कभी-कभी वे मध्यलोक के ४५८ जिनमंदिरों की

वंदना करते थे। कभी-कभी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के हिमवान पर्वत पर आकर पद्मसरोवर आदि के कमलों की सुंदरता देखते हुये 'श्रीदेवी' के महल में मंदिर का भी दर्शन करते थे। हिमवान पर्वत के ग्यारह कूटों में जो पूर्व दिशा का सिद्धकूट है वहां जाकर अकृत्रिम जिनमंदिर की जिन प्रतिमाओं की वंदना करते। पुनः विजयार्ध पर्वत के नव कूटों में से जो पूर्व दिशा का एक सिद्धकूट है उसके जिनमंदिर की वंदना करके गंगा-सिंधु नदियों की रमणीयता देखते थे। जो भरतक्षेत्र की रचना है उसका अवलोकन करते हुये छह खण्डों का विभाजन एवं आर्यखंड में अयोध्या, सम्मेदशिखर जैसे शाश्वत तीर्थों की वंदना करके विजयार्ध के विद्याधरों की श्रेणियों में भी जो कृत्रिम जिनमंदिर हैं तथा वहां जो केवली, श्रुतकेवली, महामुनि आदि तत्काल में विद्यमान थे उनके दर्शन करके प्रसन्न होते थे।

देवों में सम्यग्दृष्टि देवों का तो यह स्वभाव ही मानना चाहिये कि मध्यलोक में आकर धर्मायतनों के दर्शन करना, तीर्थंकरों के समवसरण में जाना,अकृत्रिम-कृत्रिम जैन मंदिर और जिनप्रतिमाओं के दर्शन करना, जंबूद्वीप, धातकीखंड, पुष्करार्धद्वीप ऐसे ढ़ाई द्वीप के तथा नंदीश्वर द्वीप, कुंडलवर द्वीप और रुचकरवर द्वीप के अकृत्रिम जिन मंदिरों की वंदना करना, सर्वत्र विक्रिया के बल से विचरण करते हुये भरतक्षेत्र आदि की सुंदरता को देखना इत्यादि आनंद के लिये ही नहीं प्रत्युत् महान सतिशय पुण्यबंध के लिये भी कारण माने गये हैं।

वर्तमान में यह जंबूद्वीप नाम के प्रथम द्वीप की सुंदर भव्य आकर्षक रचना हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र पर बनी हुई है। इसे देखकर आप सभी भव्यात्मा जंबूद्वीप की, भरतक्षेत्र की एवं विदेहक्षेत्र आदि की सुंदरता का अनुमान लगा सकते हैं। आज जो महानुभाव हस्तिनापुर पहुँचकर जम्बूद्वीप का दर्शन करते हैं उनके मुख से एकबार सहसा यह वाक्य निकलता है कि -'अहो! हम तो स्वर्ग में आ गये! इससे अच्छा स्वर्ग भला और क्या होगा ?

जब कृत्रिम रचना को देखकर इतना आनंद होता है तब

भला जो अकृत्रिम रचनाओं का साक्षात्कार करते होंगे उन्हें कितना आनंद प्राप्त होता होगा? वास्तव में देवगण ऐसे आनंद का अनुभव करते रहते हैं।

इस प्रकार यह हरिषेणचर देव वहां दसवें स्वर्ग में सोलह सागर की आयुपर्यंत दिव्यसुखों का अनुभव करके अंत में वहां की आयुपूर्ण कर वहां से च्युत होकर मध्यलोक में आ गया।

प्रियमित्र चक्रवर्ती

धातकी खंड द्वीप की पूर्वदिशा संबंधी विदेहक्षेत्र के पूर्वभाग में स्थित पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र थे उनकी रानी का नाम मनोरमा था। इनके एक पुत्ररत्न का जन्म हुआ उसका नाम 'प्रियमित्र' रखा गया। यह बालक धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त हुआ पुनः चक्रवर्ती पद को प्राप्त कर समस्त भोगों का उपभोग किया।

चक्रवर्ती का वैभव—

ऐरावत हाथी के समान चौरासी लाख हाथी, वायु के समान वेगशाली रत्नों से निर्मित चौरासी लाख रथ, पृथ्वी की तरह आकाश में भी गमन करने वाले अठारह करोड़ उत्तम घोड़े एवं योद्धाओं का मर्दन करने वाले ऐसे चौरासी करोड़ पदाति-पियादे थे।

स्वयं चक्रवर्ती का शरीर वज्रमय—वज्रवृषभनाराचसंहनन, समचतुरस्रसंस्थान वाला था। छहखंड के सभी राजाओं में जितना कुछ बल होता है उन सबसे अधिक बल उनके एक शरीर में था। उनके चक्ररत्न के प्रभाव से छह खंड के सभी राजा उनकी आज्ञा को सिर पर धारण करते थे। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उनके चरणों में नत थे।

चक्रवर्ती के छ्यानवे हजार रानियां थीं, जिनमें से बत्तीस हजार रानियां आर्यखंड की, बत्तीस हजार रानियां विद्याधरों की कन्यायें एवं बत्तीस हजार रानियां म्लेच्छ खंड में जन्में राजाओं की थीं। ये सब अप्सराओं के समान सुंदर थीं।

बत्तीस हजार नाट्यशालायें थीं जिनमें हमेशा गीत, नृत्य, वाद्य आदि चलते रहते थे। स्वर्गपुरी के समान बहत्तर हजार नगर, नंदनवन जैसे बगीचों से शोभायमान छ्यानवे करोड़ गांव थे। निन्यानवे हजार द्रोणमुख थे जो कि समुद्र के समीपवर्ती थे एवं धन धान्य से अतिशय समृद्ध थे। अड़तालीस हजार पत्तन जोकि रत्नों की खान होने से रत्नाकर के समान थे। सोलह हजार 'खेट' जोकि कोट, अटारी, खाई और परकोटाओं से शोभायमान थे। समुद्र के बीच में होने वाले और कुभोगभूमिज मनुष्यों से भरे छप्पन अंतर्द्वीप थे जिनके चारों ओर खाई थी ऐसे चौदह हजार संवाह अर्थात् पर्वतों पर बसने वाले शहर थे।

भोजनशाला में चावल पकाने के लिये एक करोड़ बड़े-बड़े हंडे थे, जिनमें बीज बोने की नली लगी हुई है ऐसे एक करोड़ हल थे तीन करोड़ गौशालाएं थी जहाँ रत्नों के व्यापार चलते हैं ऐसे सात सौ कुक्षिवास थे। अठारह हजार आर्यखंड के म्लेच्छ राजा थे।

नवनिधियां—काल, महाकाल, नैसर्प, पांडुक, पद्म, माणव, पिंगल, शंख और सर्वरत्न ये नवनिधियों के नाम हैं।

काल निधि से काव्य, कोश, अलंकार, व्याकरण आदि शास्त्र और वीणा, बांसुरी, नगाड़े आदि मिलते रहते हैं।

महाकाल निधि से असि, मषि, कृषि आदि छह कर्मों के साधन ऐसे समस्त पदार्थ और संपदायें निरंतर उत्पन्न होती रहती हैं।

नैसर्प निधि शय्या, आसन, मकान आदि देती है।

पांडुक निधि समस्त धान्य और छहों रसों को उत्पन्न करती है।

पद्मनिधि रेशमी, सूती आदि वस्त्र प्रदान करती थी।

माणव निधि से नीतिशास्त्र तथा अनेक प्रकार के शस्त्रों की उत्पत्ति होती है।

पिंगलनिधि से भव्य आभरण मिलते रहते हैं।

शंखनिधि सूर्य की प्रभा को तिरस्कृत करने वाले सुवर्ण को देती है

सर्वरत्ननिधि इन्द्रनील, पद्मराग, वैडूर्य, स्फटिक आदि प्रकार

के रत्नों को एवं नाना प्रकार की मणियों को देती है।

इन नवनिधियों के साथ चक्रवर्तियों के चौदह रत्न होते हैं। जिनमें सात सजीव होते हैं और सात निर्जीव माने हैं। ये सब रत्न पृथ्वी की रक्षा, विशाल ऐश्वर्य और उपयोग के साधन हैं। चक्र, छत्र, दण्ड, खड्ग, मणि, चर्म और कांकिणी ये सात निर्जीव रत्न हैं। सेनापति, गृहपति, हाथी, घोड़ा, स्त्री, तक्ष—सिलावट और पुरोहित ये सात सजीव रत्न हैं।

प्रियमित्र चक्रवर्ती ने सुदर्शन नामक चक्ररत्न से छहों खंडों को जीत लिया था। उनका 'सूर्यप्रभ' नाम का छत्र राजसभा में जगमग ज्योति फैलाता हुआ सूर्य की प्रभा को भी लज्जित करता रहता था। दण्डरत्न से विजयार्ध पर्वत की गुफा का द्वार खोला गया था। सौनन्दक तलवार को देखकर वैरी राजा कंपित होकर चक्रवर्ती की शरण में आ जाते थे। मणि—चूड़ामणि रत्न अंधकार को दूर कर देता था। चर्मरत्न से मेघकृत जल के उपद्रव से सेना की रक्षा होती थी। कांकिणीरत्न से गुफा में सूर्यचंद्र के आकार बनाकर प्रकाश फैलाया जाता था। सेनापति रत्न दिग्विजय में सभी योद्धाओं से अजेय रहता था। कामवृष्टि नामक गृहपति रत्न घर के सारे काम काज संभालता था। विजयगिरि नाम का उत्तम हाथी रत्न चक्रवर्ती का वाहन था। पवनंजय नाम का अश्वरत्न (घोड़ा) स्थल के समान समुद्र में भी दौड़ लगाता था। युवती नाम की स्त्रीरत्न चक्रवर्ती के भोगसुख का साधन थी जोकि अपने हाथ की शक्ति से वज्र को भी चूर कर सकती थी। भद्रमुख नाम का तक्षरत्न दिग्विजय के समय स्थान-स्थान पर सुंदर महलों का निर्माण करता था और पुरोहित रत्न सभी निमित्तज्ञान आदि में प्रवीण हुआ संपूर्ण धार्मिक कार्यों को संपन्न कराता था।

दशांग भोग—चक्रवर्ती के रत्नों के साथ ही दशांग भोग माने गये हैं-

१.नवनिधियाँ २. पट्टरानियां, ३. नगर ४. शय्या ५. आसन ६. सेना ७. नाट्यशालायें ८.भाजन ९.भोजन और १०. वाहन ये

दश प्रकार के भोगोपभोग के साधन रहते हैं।

सोलह हजार गणबद्ध जाति के व्यंतर देव हाथ में तलवार लेकर निधिरत्न और चक्रवर्ती की रक्षा करने में तत्पर रहते थे। प्रिय मित्र चक्रवर्ती ने पूर्वपुण्य के प्रभाव से ऐसे चक्रवर्ती के वैभव को प्राप्त किया।

उन्होंने चक्ररत्न के प्राप्त होने पर दिग्विजय के लिये प्रस्थान करके छहखंड पृथ्वी को जीत लिया पुनः न्यायनीतिपूर्वक एकछत्र शासन करते हुये प्रजा को पुत्र के समान सुख प्रदान किया।

एक दिन 'क्षेमंकर' भगवान के समवसरण में पहुंचकर भगवान के दर्शन किये। मनुष्यों के कोठे में बैठकर भगवान की दिव्यध्वनि से तत्वों का उपदेश सुना पुनः संसार के समस्त भोगों को क्षणभंगुर मानकर विरक्त हो गये। वापस आकर 'सर्वमित्र' नाम के अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर एक हजार राजाओं के साथ प्रभु के श्रीचरणों में दीक्षित हो गये। उस समय पांच समितियों और तीन गुप्तियोंरूप आठ प्रवचनमातृकाओं के साथ-साथ अहिंसा महाव्रत आदि पांच महाव्रत उन मुनिराज में पूर्ण प्रतिष्ठा को प्राप्त हुये थे। बहुत काल तक पृथ्वी तल पर विहरण करते हुये निर्जनवनों में ध्यान करते थे। कभी-कभी शरीर को रत्नत्रय का साधन मानकर श्रावक के घर में छ्यालीस दोष और बत्तीस अंतराय टालकर करपात्र में शुद्ध प्रासुक आहार ग्रहण करते थे पुनः वन में जाकर आत्मसिद्धि हेतु योगसाधना में लीन हो जाते थे। इस प्रकार मुनिचर्या का पालन करते हुये अन्त में समाधिपूर्वक शरीर को छोड़कर महान त्याग के प्रभाव से बारहवें स्वर्ग में देव हो गये।

बारहवें स्वर्ग के देव

प्रियमित्र चक्रवर्ती महामुनि ने सहस्रार स्वर्ग में देवपद प्राप्त किया, सूर्यप्रभ इनका नाम था। वहां उनकी आयु अठारह सागर प्रमाण थी। अणिमा, महिमा आदि अनेक ऋद्धियों से सहित थे। सबसे पहले ये देव जिनमंदिरों में पहुंचते हैं। जिनमंदिर में प्रतिमाओं

की वंदना स्तुति करके पूजा की। इन जिनमंदिरों में एक सौ आठ जिनप्रतिमायें विराजमान रहती हैं। प्रत्येक मंदिर में झारी, कलश, दर्पण, चंवर, बीजना, छत्र और ठोना ये आठ मंगल द्रव्य एक सौ आठ-एक सौ आठ रहते हैं। इन मंदिरों में दुंदुभि, मृदंग, मर्दल, जयघंटा, भेरी, झांझ, वीणा और बांसुरी आदि वाद्यों के उत्तम-उत्तम शब्द सदैव होते रहते हैं।

प्रत्येक जिनप्रतिमायें आठ प्रातिहार्यों से सहित हैं। अशोकवृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, ये सात हैं। दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामंडल और देव-दुंदुभि ये आठ प्रातिहार्य माने हैं।

सम्यग्दृष्टि देव कर्मक्षय के निमित्त गाढ़ भक्ति से सहित होकर विविध अष्ट द्रव्यों से जिनेंद्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।

तीनों लोकों में अकृत्रिम जिनमंदिरों की संख्या का प्रमाण बताया है। अधोलोक में नरकधरा के ऊपर भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख जिनमंदिर हैं। मध्यलोक में जंबूद्वीप नाम के प्रथम द्वीप से लेकर रुचकवर' नाम के तेरहवें द्वीप तक चार सौ अट्ठावन मंदिर हैं । इनमें से जंबूद्वीप में सुमेरूपर्वत के १६, गजदंत के ४, जंबूवृक्ष शाल्मलिवृक्ष के २, सोलह वक्षारों के १६, चौंतीस विजयार्धों के ३४ एवं षट् कुलाचलों के ६ ये १६+४+२+१६+३४+६=७८ हुये। ऐसे पूर्वधातकी खंड के ७८, पश्चिम धातकी खंड के ७८, पूर्व पुष्करार्धद्वीप के ७८, पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के ७८, इष्वाकार के ४, मानुषोत्तर पर्वत के ४, नंदीश्वर द्वीप के ५२, कुंडलवर द्वीप के ४ और रुचकवर द्वीप के ४ ऐसे ७८+७८+७८+७८+७८+४+४+५२+४+४=४५८ हो गये।

ऊर्ध्वलोक के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार तेईस हैं। स्वर्गों के एवं नवग्रैवेयक आदि के जितने विमान हैं उतने ही जिनमंदिर हैं। सौधर्मस्वर्ग में ३२ लाख, ईशान में २८ लाख, सानत्कुमार में १२ लाख, माहेन्द्र में ८ लाख, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल में ४ लाख, लांतव-कापिष्ठ में ५० हजार, शुक्र-महाशुक्र में ४० हजार, शतार सहस्रार में ६ हजार, आनत-प्राणत, आनत और अच्युत ऐसे चार कल्पों में सात सौ तीन अधोग्रैवेयक १११, तीन

मध्यग्रैवेयक में १०७, तीन ऊर्ध्वग्रैवेयक में ९१, नव अनुदिश में ९ और पांच अनुत्तर में ५ ऐसे सब मिलाकर ३२००००० + २८००००० + १२००००० + ८००००० +४००००० +५०००० +४०००० +६००० +७००+१११+ १०७+९१+९+५=८४९७०२३ अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। कुल मिलाकर ७७२००००० +४५८+८४९७०२३=८५६९७४८१ अकृत्रिम जिनमंदिर हैं।

इसके आगे व्यंतर देवों के यहां और ज्योतिषी देवों के यहां असंख्यातों जिनमंदिर माने गये हैं। इन प्रत्येक जिनमंदिरों में १०८-१०८ जिनप्रतिमायें विराजमान हैं। अतः उपयुर्क्त जिनमंदिरों के जिन प्रतिमाओं की संख्या नव सौ पचीस करोड़, त्रेपन लाख, सत्ताइस हजार नव सौ अड़तालीस हैं।

नव सौ पचीस कोटी त्रेपन लाख सताइस सहस प्रमाण।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, शिवसुख हेतु करूँ प्रणाम।।

सम्यग्दृष्टि देव इन मंदिरों में से मध्यलोक के अकृत्रिम जिन मंदिरों की तो अतीव भक्ति से पूजा करते ही हैं जहां जहां संभव है वहां-वहां जाकर वे सूर्यप्रभ देव जिनप्रतिमाओं की वंदना किया करते हैं। शेष जिनमंदिरों की परोक्ष से ही वंदना का पुण्य संचय किया करते थे।

कभी-कभी ये देव अपने देव परिवार के साथ मध्यलोक में आकर महामुनियों की वंदना करके उनके श्रीमुख से धर्मोपदेश सुन कर प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार धर्माराधना में समय व्यतीत किया करते हैं।

आयु के अंत में स्वर्ग में ही सुंदर उद्यान में कल्पवृक्ष के नीचे महामंत्र का स्मरण करते हुये ध्यान में लीन हो गये। देव शरीर से प्राण निकल गये और वैक्रियिक शरीर तत्क्षण ही कपूर जैसा विलीयमान हो गया। वे मध्यलोक में इसी भरत क्षेत्र के छत्रपुर नगर में रानी के पुत्र हो गये।

नंदमहाराज

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखंड में एक छत्रपुर नाम का नगर था। वहां के राजा नंदिवर्धन की रानी वीरवती के गर्भ में उपर्युक्त सूर्यप्रभ देव का जीव आ गया। नव माह के बाद रानी ने पुत्र को जन्म दिया। पूरे राज्य में आनंद मंगल होने से राजा ने पुत्र का नाम 'नंद' रखा इसे नंदन भी कहते थे। नंदन बालक माता की अंगुली पकड़कर खेलते हुये महाराजा नंदिवर्धन का मनोरंजन किया करता था।

पुत्र के यौवनावस्था को प्राप्त होने पर राजा ने अपना राज्यभार पुत्र को सौंप दिया, क्योंकि यही सनातन परंपरा है। राजा नंद ने भी चिरकाल तक राज्य संचालन करते हुये प्रजा को खूब संतुष्ट किया। इष्ट- अभिलषित राज्य का उपभोग कर राजा नंद ने 'प्रोष्ठिल' नाम के गुरू के पास जैनेश्वरी दीक्षाग्रहण कर ली। मुनियों के संघ में धर्मोपदेश देकर सच्चे मोक्षमार्ग का दिग्दर्शन कराते रहते थे।

इन्होंने ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम विशेष से गुरु के सान्निध्य में ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। अंग और पूर्वरूप श्रुत का ज्ञान गुरु के मुख से ही प्राप्त होता है कभी किसी को बिना गुरु के नहीं होता है।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध

दिगम्बर मुनि पंचमहाव्रत, पंचसमिति, पंचेन्द्रिय निरोध, षट् आवश्यक क्रिया, केशलोंच, वस्त्रों का पूर्ण त्याग, स्नान का त्याग, पृथ्वी पर शयन, दंतधावन का त्याग, बड़े होकर भोजन और एक बार भोजन इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं। सम्पूर्ण आरंभ और परिग्रह से रहित ज्ञान-ध्यान में रत रहते हैं। परीषह और उपसर्गों को शांति और क्षमाभाव से सहन करते हैं। उत्तम क्षमादि दस धर्मों का पालन करते हैं। नंद मुनिराज ने घोर तपश्चरण से अपनी आत्मा को निर्मल बना लिया एवं दर्शनविशुद्धि

आदि सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन करने लगे। सातिशय तीर्थंकर प्रकृति का बंध कराने में समर्थ उन भावनाओं का संक्षिप्त लक्षण इस प्रकार है।

सोलह कारण भावना-

१. दर्शन विशुद्धि- पच्चीस मल दोषरहित विशुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करना।

२. विनय सम्पन्नता-देव शास्त्र गुरु तथा रत्नत्रय की विनय करना।

३. शीलव्रतों में अनतिचार- व्रतों और शीलों में अतिचार नहीं लगाना।

४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग-सदा ज्ञान के अभ्यास में लगे रहना।

५. संवेग-धर्म और धर्म के फल में अनुराग होना।

६. शक्तितस्तप- अपनी शक्ति को न छिपा कर अन्तरंग बहिरंग तप करना।

७. शक्तितस्त्याग- अपनी शक्ति के अनुसार आहार, औषधि, अभय और शास्त्र दान देना।

८. साधु समाधि-साधुओं का उपसर्ग आदि दूर करना या समाधि सहित वीर मरण करना।

९. वैयावृत्यकरण-व्रती, त्यागी, साधर्मी की सेवा करना, वैयावृत्ति करना।

१०. अर्हंत भक्ति-अरहंत भगवान् की भक्ति करना।

११. आचार्य भक्ति-आचार्य की भक्ति करना।

१२. बहुश्रुत भक्ति-उपाध्याय परमेष्ठी की भक्ति करना।

१३. प्रवचन भक्ति-जिनवाणी की भक्ति करना।

१४. आवश्यक अपरिहाणि-छह आवश्यक क्रियाओं का सावधानी से पालन करना।

१५. मार्ग प्रभावना-जैनधर्म का प्रभाव फैलाना।

१६. प्रवचन वत्सलत्व-साधर्मीजनों में अगाध प्रेम करना।

इन सोलह भावनाओं में दर्शनविशुद्धि भावना का होना बहुत

जरूरी है फिर उसके साथ दो तीन आदि कितनी भी भावनायें हो या सभी हों तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। नन्द मुनिराज ने इन भावनाओं से तीन लोक में आश्चर्य को उत्पन्न कराने वाली 'तीर्थंकर' प्रवृत्ति का बंध कर लिया। आयु के अंत में आराधना से मरकर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इंद्र हो गये।

पाठक वृंद! देखिये! पुरुरवा भील मद्य-मांस-मधु के त्याग से सौधर्म स्वर्ग के सुख का अनुभव कर चक्रवर्ती का पुत्र हुआ। पुनः मिथ्यात्व और मानकषाय से सहित था फिर भी अल्प आरंभ परिग्रह रखने से और मंद कषायों के होने से तथा कुतपश्चरण के प्रभाव से देव हो गया। पांच बार पारिव्राजक बना व छह बार देव पद पाया। किन्तु आगे मिथ्यात्व के निमित्त से त्रस-स्थावर और निगोद रूप घोर कुयोनियों में असंख्यात वर्ष पर्यंत घूमता रहा। कदाचित् विश्वनंदी मुनि भी हुआ तो निदान से दूषित होकर अर्धचक्री पद का अनुभव करके भी नरकों के महान् दुःख भोगे। जब सिंह की पर्याय में सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त कर लिया तब अणुव्रत के प्रभाव से और सल्लेखना के माहात्म्य से उत्तम देव हुआ। अब यह सम्यक्त्व के निमित्त से उत्तम-उत्तम देवसुख और राज्यसुखों का अनुभव करता रहा। देखिये! सिंह के जीव ने आगे चलकर चार बार सम्यक्त्व सहित मुनि व्रत धारण किया तथा ' संसारी जीवों को दुःख से निकालकर मैं उत्तम सुख में पहुँचा दूँ, इस प्रकार उत्कृष्ट भावनारूप अपायविचय धर्मध्यान से 'नंदमुनिराज' ने असंख्य प्राणियों पर अनुग्रह करने में समर्थ ऐसी तीर्थंकर प्रकृति बांध ली।

अच्युतेन्द्र

नंद महामुनि समाधिमरण के प्रभाव से सोलहवें स्वर्ग में पुष्पोत्तर विमान में 'इन्द्र' हो गये। इस सोलहवें स्वर्ग का नाम अच्युत है अतः ये इन्द्र अच्युतेन्द्र कहलाते थे।

देवों की उत्पत्ति के बारे में मूलाचार में कहा है-

देहस्स य णिव्वत्ती भिण्णमुहुत्तेण होइ देवाणं।
सव्वंगभूसणगुणं जोव्वणमणि होदि देहम्मि।।[1]

टीका में—जोव्वणं—यौवनं प्रथमवयः परमरमणीयावस्था सर्वालंकारसमन्विता अतिशयमतिशोभनं सर्वजननयनाल्हादनपरं, होदि-भवति, देहम्मि—देहे शरीरे। देवानां यौवनमपि शोभनं सर्वांगभूषणयुतं तेनैव भिन्नमुहूर्तेन भवतीति।

भवनवासी आदि चारों प्रकार के देवों के कुछ कम दो घड़ी के काल से कुछ कम अंतर्मुहूर्त के काल से छहों पर्याप्तियां पूर्ण हो जाती हैं। सर्वकार्य करने में समर्थ शरीर भी पूर्ण बन जाता है। हाथ-पैर, मस्तक, कंठ आदि को विभूषित करने वाले वस्त्र, आभूषण और नाना गुण भी पूर्ण हो जाते हैं। वह देव शरीर नव यौवन से संपन्न, परमरमणीय, सर्वालंकार से समन्वित, अतिशय सुंदर और सर्वजनों को आल्हादित करने वाला हो जाता है।

इन अच्युतेन्द्र की आयु बाईस सागर प्रमाण थी, तीन हाथ ऊंचा शरीर था, द्रव्य से—शरीर वर्ण से और भाव से दोनों ही शुक्ल लेश्यायें थीं, बाईस पक्ष में एक बार श्वास लेते थे। बाईस हजार वर्ष में एक बार मानसिक अमृत का आहार था, सदा मानसिक प्रवीचार—कामसेवन था अर्थात् मन में ही देवांगनाओं का स्मरण करने से कामभोग की तृप्ति हो जाती थी। अणिमा, महिमा आदि दिव्य ऋद्धियों से नाना प्रकार के सुखों का अनुभव करते थे। उनका अवधिज्ञान छठी पृथ्वी तक की बातों को जान लेता था, उनके विक्रिया की सीमा थी उनके अवधिज्ञान क्षेत्र के बराबर थी। अपने सामानिक आदि देवों और देवांगनाओं से घिरे हुये वे इंद्रराज अपने पुण्य कर्म के विशेष उदय से सुखरूपी सागर में सदा निमग्न रहते थे।

कभी वे अपनी इन्द्रसभा में देव अप्सराओं का नृत्य देखते थे। कभी देव-देवियों के साथ मध्यलोक में जाकर द्वीप-समुद्रों की शोभा देखकर आनंद का अनुभव किया करते थे।

मध्यलोक में अकृत्रिम जिनमंदिर तेरह द्वीपों तक ही हैं अतः कभी-कभी ये इन्द्रराज रुचकवर द्वीप आदि में पहुंचकर १००८ दिव्य क्षीरसागर के जल से भरे कलशों से जिनप्रतिमाओं का

महाभिषेक करके उत्सव मनाते थे। अष्टद्रव्य से पूजा करते थे और महान पुण्य का संचय कर लिया करते थे।

इस प्रकार ये अच्युतेन्द्र सागर पर्वंत दिव्य सुखों का अनुभव करके जब मनुष्य लोक में आने वाले थे, आयु में छह माह शेष रह गये तक सौधर्मेन्द्र ने कुबेर को आज्ञा दी कि इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखंड में कुंडलपुर नगर में अंतिम तीर्थंकर का जन्म होने वाला है अतः तुम जाकर जन्म से पंद्रह महिने पूर्व से ही रत्नों की वर्षा करना प्रारंभ कर दो। अच्युतेन्द्र सुरराज अपने पुष्पोत्तर विमान में ही थे और यहां कुंडलपुर का माहात्म्य बढ़ने लगा था।

पंचकल्याणक वैभव—

जब अच्युतेन्द्र की आयु छह मास बाकी रह गई तब इस भरत क्षेत्र के विदेह नामक देश संबंधी कुंडपुर—कुंडलपुर[1] नगर (निकट नालंदा-बिहार प्रदेश) के राजा सिद्धार्थ के भवन के आँगन में प्रतिदिन साढ़े सात करोड़ प्रमाण रत्नों की धारा बरसने लगी। आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन रात्रि के पिछले प्रहर में रानी प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्न देखे और पुष्पोत्तर विमान से अच्युतेन्द्र का जीव च्युत होकर रानी के गर्भ में आ गया। प्रातःकाल राजा के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर रानी अत्यन्त संतुष्ट हुई। तदनंतर देवों ने आकर गर्भ कल्याणक उत्सव मनाकर माता-पिता का अभिषेक करके उत्सव मनाया।

नव मास पूर्ण होने के बाद चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन रानी त्रिशला ने पुत्र को जन्म दिया। भगवान महावीर का जन्म तेरस की रात्रि में हुआ है ऐसा जयधवला में वर्णित है-

"आषाढजोण्हपक्खछट्ठीए कुंडलपुर णगराहिव -णाहवंस -सिद्धत्थणरिंदस्य तिसिलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहियणवमासे अच्छिय चइत्तसुक्कपक्ख-तेरसीए रत्तीए उत्तरफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो वड्ढमाणजिणिंदो[2]।।"

आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष की षष्ठी के दिन कुंडलपुर नगर

१. तिलोयपण्णत्ति, अधिकार ४। २. कसायापाहुड, पुस्तक १, पृ. ७७

के स्वामी नाथवंशी सिद्धार्थ नरेन्द्र की रानी त्रिशला देवी के गर्भ में आकर और वहां नव मास आठ दिन रहकर चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन रात्रि में उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के रहते हुये वर्द्धमान जिनेन्द्र ने जन्म लिया। उस समय देवों के स्थानों में अपने आप वाद्य बजने लगे, तीनों लोकों में सर्वत्र एक हर्ष की लहर दौड़ गई। सौधर्म इन्द्र ने बड़े वैभव के साथ सुमेरूपर्वत की पांडुकशिला पर क्षीरसागर के जल से भगवान का जन्माभिषेक किया। इन्द्र ने उस समय उनके "वीर" और "वर्धमान" ऐसे दो नाम रखे।

श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर के बाद दो सौ पच्चास वर्ष बीत जाने पर श्री महावीर स्वामी उत्पन्न हुए थे। उनकी आयु भी इसी में शामिल है। कुछ कम बहत्तर वर्ष की आयु थी, सात हाथ ऊँचे, स्वर्ण वर्ण के थे। एक बार संजय और विजय नाम के चारणऋद्धिधारी मुनियों को किसी पदार्थ में संदेह उत्पन्न होने से भगवान के जन्म के बाद ही वे उनके समीप आकर उनके दर्शन मात्र से ही संदेह से रहित हो गये तब उन मुनि ने उन बालक का "सन्मति" नाम रखा। किसी समय संगम नामक देव ने सर्प बनकर परीक्षा ली और भगवान को सफल देखकर उनका "महावीर" यह नाम रखा।

तीस वर्ष के बाद भगवान को पूर्वभव का स्मरण होने से वैराग्य हो गया तब लौकान्तिक देवों द्वारा स्तुति को प्राप्त भगवान ने ज्ञातृवन में सालवृक्ष के नीचे जैनेश्वरी दीक्षा ग्रण कर ली और तत्काल मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त कर लिया। पारणा के दिन कूलग्राम की नगरी के कूल नामक राजा के यहाँ खीर का आहार ग्रहण किया। किसी समय उज्जयिनी के अतिमुक्तक वन में ध्यानारूढ़ भगवान पर महादेव नामक रुद्र भयंकर उपसर्ग करके विजयी भगवान के "महतिमहावीर" नाम रखकर स्तुति की। किसी दिन कौशाम्बी नगरी में सांकलों में बंधी चंदनबाला ने भगवान को पड़गाहन किया तब उसकी बेड़ी आदि टूट गई। मिट्टी का सकोरा स्वर्णपात्र बन गया एवं कोदों का भात शालीचावल की खीर बन गया तभी चंदनबाला ने नवधाभक्ति पूर्वक महामुनि महावीर को

आहार देकर पंचाश्चर्य प्राप्त किया।

छद्मस्थ अवस्था के बारह वर्ष बाद जृंभिक ग्राम की ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन में सालवृक्ष के नीचे वैशाख शुक्ला दशमी के दिन भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उस समय इन्द्र ने केवलज्ञान की पूजा की। भगवान की दिव्यध्वनि के न खिरने पर इन्द्र गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण को युक्ति से लाये तब उनका मान गलित होते ही वे भगवान से दीक्षित होकर मनःपर्यय ज्ञान और सप्तऋद्धि से विभूषित होकर प्रथम गणधर हो गये तब भगवान की दिव्यध्वनि खिरी। श्रावण कृष्ण एकम के दिन दिव्यध्वनि को सुनकर गौतम गणधर ने सायंकाल में द्वादशांग श्रुत की रचना की। इसके बाद वायुभूति आदि ग्यारह गणधर हुए हैं। भगवान के समवसरण में मुनीश्वरों की संख्या चौदह हजार थी, चंदना आदि छत्तीस हजार आर्यिकाएं थीं, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें, असंख्यात देव देवियाँ और संख्यातों तिर्यंच थे। बारह गणों से वेष्टित भगवान ने विपुलाचल पर्वत पर और अन्यत्र भी आर्य खंड में बिहार कर सप्ततत्व आदि का उपदेश दिया।

अंत में पावापुर नगर के मनोहर नामक वन में अनेक सरोवरों के बीच शिलापट्ट पर विराजमान होकर कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को अंतिम प्रहर में स्वाति नक्षत्र में एक हजार मुनियों के साथ मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया। तब देवों ने मोक्ष कल्याणक पूजा कर दीप मालिका जलायी थी। तब से लेकर आज तक कार्तिक कृ. अमावस्या को दीपावली पर्व मनाया जाता है।

भगवान के जीवन वृत्त से हमें यह समझना है कि मिथ्यात्व के फलस्वरूप जीव त्रस स्थावर योनियों में परिभ्रमण करता है। सम्यक्त्व और व्रतों के प्रसाद से चतुर्गति के दुखों से छूटकर शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेता है अतः मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यग्दृष्टि बन करके व्रतों से अपनी आत्मा को निर्मल बनाना चाहिए।

श्रुतज्ञान के भेद

श्रुतज्ञानके अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य ये दो भेद भी माने हैं। जिसमें अंग प्रविष्ट के द्वादशांगरूप बारह भेद और अंगबाह्य के अनेकों भेद होते हैं। द्वादशांग में प्रत्येक के पदों का प्रमाण बतलाया गया है जो कि श्रुतस्कंध यंत्र में स्पष्ट है और जिन अक्षरों के पद न बन सकें वे ही अंगबाह्य कहलाते हैं। उनके सामायिक, स्तव, वंदना आदि भेद वर्णित हैं।

श्रुतज्ञान के भेद—

गणधर[1] देव के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा अल्पायु बुद्धि वाले प्राणियों के अनुग्रह के लिए अंगों के आधार से रचे गये संक्षिप्त ग्रंथ अंग बाह्य हैं। इसमें कालिक, उत्कालिक आदि अनेकों भेद हैं। स्वाध्याय काल में जिनके पठन-पाठन का नियम है उन्हें कालिक एवं जिनके पठन-पाठन का नियत समय न हो उन्हें उत्कालिक कहते हैं।

भगवान की वाणी को चार अनुयोगरूप से भी विभाजित किया गया है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

प्रथमानुयोग—चार पुरुषार्थों का आख्यान जिसमें है ऐसे ग्रन्थ—चरित ग्रन्थ, पुराण ग्रन्थ, पुण्योत्पादक शास्त्र, बोधि—रत्नत्रय की प्राप्ति और समाधि के लिए खानस्वरूप शास्त्र प्रथमानुयोग कहलाते हैं। इस अनुयोग में मुख्यरूप से त्रेसठ शलाका पुरुषों के चरित का वर्णन किया जाता है।

करणानुयोग—जो शास्त्र लोकालोक के विभाग को, युग के परिवर्तन और चतुर्गतियों को दिखलाने के लिए दर्पणके समान है वह करणानुयोग है।

चरणानुयोग—श्रावक और मुनियों के चरित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का जिसमें वर्णन है वह चरणानुयोग है।

द्रव्यानुयोग—जिसमें जीव-अजीव, पुण्य-पाप और बंध-मोक्ष का विस्तृत वर्णन है वे द्रव्यानुयोग शास्त्र हैं।[2]

---

१. आरातीयाचार्य कृतांगार्थप्रत्यासन्नरूपामंगबाह्यम्।।१३।। (तत्वार्थवार्तिक)

२. रत्नकरण्डश्रावकाचार

वर्तमान काल के-

त्रेसठ शलाका पुरुषों के नाम

इस चतुर्थ काल में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण और ९ प्रतिनारायण ऐसे त्रेसठ महापुरुष होते हैं। इनमें से भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर और महाराज भरत प्रथम चक्रवर्ती हुए हैं।

२४ तीर्थंकर-ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंदप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुन्थु, अरनाथ, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व, और महावीर।

१२ चक्रवर्ती- भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त।

९ बलभद- विजय, अचल, धर्म, सुदर्शन, नंदी, नंदिमित्र, रामचन्द्र और पद्म।

९ नारायण— त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषपुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण, और श्रीकृष्ण।

९ प्रतिनारायण— अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुं, भवालि, प्रहरण, रावण और जरासन्ध।

ये शलाका पुरुष चतुर्थकाल में ही होते हैं। ऐसे ही ये महापुरुष पूर्वकाल में भी अनंतों हो चुके हैं और भविष्य में भी होते ही रहेंगे। इन्हीं में से चौबीस तीर्थंकरों का इस ग्रन्थ में वर्णन कियागया है।

धर्म तीर्थ व्युच्छिति—

पुष्पदंत से लेकर धर्मनाथपर्यंत सात तीर्थों में जिनधर्म की व्युच्छित्ति हुई है शेष सोलह तीर्थंकरों के तीर्थों में धर्म की परंपरा निरंतर रही है, अर्थात् पुष्पदंत भगवान के तीर्थ में पावपल्य, शीतलनाथ के तीर्थ में अर्द्धपल्य, श्रेयांसनाथ के तीर्थ में पौन पल्य, वासुपूज्य के तीर्थ में पल्य, विमलनाथ के तीर्थ में पौन पल्य, अनंतनाथ के तीर्थ में अर्द्धपल्य, और धर्मनाथ के तीर्थ में पाव पल्य

प्रमाण धर्मतीर्थ का उच्छेद रहा है। उस समय दीक्षा लेने वालों का अभाव होने से धर्मरूपी सूर्य अस्त हो गया था, हुंडावसर्पिणी के दोष से ये सात व्युच्छेद होते हैं।

कुदान की प्रथा—

श्री शीतलनाथ के तीर्थ के अंतिम भाग में काल दोष से वक्ता, श्रोता और आचरण करने वालों का अभाव हो जाने से समीचीन धर्म का नाश हो गया। मदिल देश में मलय देश का राजा मेघरथ कुछ दान देना चाहता था उसने कुमार्गगामी परंपरा से आगत आहार, औषधि, अभय और शास्त्र दान को छोड़कर मुंडशालायन ब्राह्मण के द्वारा कहे हुए कन्यादान, हस्तिदान, सुवर्णदान, अश्वदान, गोदान, दासीदान, तिलदान, रथदान, भूमिदान और गृहदान यह दस प्रकार का दान स्वेच्छा से चलाया।

हिंसा यज्ञ की उत्पत्ति—

मुनिसुव्रतनाथ के मोक्ष जाने के बाद एक समय 'क्षीरकदंब' उपाध्याय के पास राजपुत्र वसु, गुरुपुत्र पर्वत और धर्मनिष्ठ श्रावक नारद इन तीनों ने विद्याध्ययन किया था। गुरु के दीक्षित होने के बाद किसी समय पर्वत ने सभा में कहा कि 'अजैर्यष्टव्यं' बकरों से होम करना चाहिए ऐसा अर्थ है। तब नारद ने कहा 'अज' का अर्थ न उगने योग्य पुराने धान्य हैं उनसे यज्ञ करना चाहिए ऐसा गुरुदेव ने अर्थ किया था किंतु पर्वत ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। अंत में राजा वसु के राजदरबार में निर्णय गया। वसु ने यथार्थ जानते हुये भी गुरुपत्नी पर्वत की माता से वचनबद्ध होने से पर्वत के हिंसामय वचनों को सत्य कह दिया, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी में सिंहासन के धँसने से मरकर नरक गया। इधर पर्वत ने महाकाल नामक असुर की सहायता से यज्ञ में खूब हिंसा करायी और उसके फल से ये सब दुर्गति के पात्र हो गये किंतु नारद हिंसा का निषेध करने से स्वर्ग गया।

भगवान मुनिसुव्रत के तीर्थ में ही मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र हुए हैं। नेमिनाथ भगवान के समय उनके चचेरे बंधु श्री कृष्ण नारायण हुए हैं।

तीर्थंकरों का अंतराल—

भगवान ऋषभदेव के मोक्ष चले जाने के बाद पचास लाख करोड़ सागर बीत जाने पर अजितनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ था। इनकी आयु भी इसी अंतराल में शामिल थी।

आगे सर्वत्र अंतराल की संख्या में उन-उन तीर्थंकरों की आयु को सम्मिलित ही समझना।

श्री अजितनाथ तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद तीस लाख करोड़ सागर बीत जाने पर संभवनाथ उत्पन्न हुए थे।

श्री संभवनाथ के बाद दस लाख करोड़ वर्ष का अंतराल बीत जाने पर अभिनंदननाथ अवतीर्ण हुए थे।

इनके बाद नौ लाख करोड़ सागर बीत जाने पर सुमतिनाथ उत्पन्न हुए थे।

इनके बाद नब्बे हजार करोड़ सागर बीत जाने पर पद्मप्रभ तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे।

इनके अनंतर नौ हजार करोड़ सागर बीत जाने पर सुपार्श्वनाथ उत्पन्न हुए थे।

अनंतर नौ सौ करोड़ सागर का अंतर बीत जाने पर चंद्रप्रभ जिनेन्द्र ने जन्म लिया था।

इसके पश्चात् नब्बे करोड़ सागर का अंतर निकल जाने पर पुष्पदंत तीर्थंकर हुए हैं।

इनके बाद नौ करोड़ सागर का अंतर बीत जाने पर शीतलनाथ ने जन्म लिया है।

इन शीतलनाथ के अनंतर जब सौ सागर तथा छयासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक सागर प्रमाण अंतराल निकल गया तब श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ है।

श्रेयांसनाथ के बाद जब चौवन सागर प्रमाण अंतर बीत चुका था और अंतिम पल्य के तृतीय भाग में जब धर्म की संतति का व्युच्छेद हो गया था तब वासुपूज्य का जन्म हुआ था।

इनके बाद जब तीस सागर वर्ष बीत गये और पल्य के अंतिम

भाग में धर्म का विच्छेद हो गया था तब विमलनाथ का जन्म हुआ था।

विमलनाथ के मोक्ष चले जाने के बाद नौ सागर और पौन पल्य बीत जाने पर तथा अंतिम समय में धर्म का विच्छेद हो जाने पर श्री अनंतनाथ का जन्म हुआ था।

इनके बाद चार सागर प्रमाण काल बीत चुका और अंतिम पल्य का आधा भाग जब धर्म रहित हो गया तब धर्मनाथ का जन्म हुआ था।

धर्मनाथ के बाद पौन पल्य कम तीन सागर के बीत जाने पर तथा पाव पल्य तक धर्म का विच्छेद हो लेने पर श्री शांतिनाथ भगवान उत्पन्न हुए थे।

इनके बाद अर्धपल्य बीत जाने पर श्री कुंथुनाथ उत्पन्न हुए हैं।

इनके अनंतर एक हजार करोड़ वर्ष कम पल्य का चतुर्थ भाग बीत जाने पर श्री अरनाथ उत्पन्न हुए है।

इनके बाद एक हजार करोड़ वर्ष बीत जाने पर मल्लिनाथ उत्पन्न हुए हैं।

इनके बाद चौवन लाख वर्ष बीत जाने पर मुनिसुव्रतनाथ उत्पन्न हुए हैं।

इनके बाद साठ लाख वर्ष बीत जाने पर नमिनाथ उत्पन्न हुए हैं।

इनके बाद पाँच लाख वर्ष बीत जाने पर नेमिजिनेन्द्र उत्पन्न हुए हैं।

श्री नेमिनाथ भगवान के बाद तिरासी हजार सात सौ पचास वर्ष बीत जाने पर पार्श्वनाथ जिनेन्द्र का जन्म हुआ है।

श्री पार्श्वनाथ के बाद दो सौ पचास वर्ष बीत जाने पर श्री महावीर स्वामी उत्पन्न हुए थे। इनकी आयु भी इसी में शामिल थी[२]।

तीर्थंकर के वर्ण— पद्मप्रभ, वासुपूज्य का रक्तवर्ण, चन्द्रप्रभ और पुष्पदंत का श्वेतवर्ण, सुपार्श्व और पार्श्व का नीलवर्ण, नेमिनाथ और मुनिसुव्रत का कृष्णवर्ण एवं शेष सोलह तीर्थंकर का स्वर्ण वर्ण है।

बालयति—वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान ये पाँच तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी रहे हैं। शेष उन्नीस तीर्थंकर

१. ऐसे ही सभी अंतरालों में तीर्थंकरो की आयु शामिल समझना।
२. यह अंतरालों का वर्णन उत्तर पुराण के आधार से है।

विवाहित होकर राज्य करके दीक्षित हुए हैं।

वंश— वीर प्रभु नाथवंशी, पार्श्वजिन उग्रवंशी, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ हरिवंशी, धर्मनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ कुरुवंशी और शेष सत्तरह तीर्थंकर इक्ष्वाकु वंश में हुए हैं।

रत्नवृष्टि—समस्त तीर्थंकरों की आदि पारणाओं और वर्धमान स्वामी की सभी पारणाओं में नियम से रत्नवृष्टि हुआ करती थीं। वह रत्नवृष्टि उत्कृष्टता से साढ़े बारह करोड़ और जघन्य रूप से साढ़े बारह लाख होती थी। इनमें से कितने ही दाता तो तपश्चरण कर उसी जन्म से मोक्ष चले गये और कितने ही जिनेन्द्र भगवान के मोक्ष जाने के बाद तीसरे भव में मोक्ष गये हैं।[१]

केवलज्ञान उत्पत्ति के समय उपवास—

ऋषभदेव, मल्लिनाथ, और पार्श्वनाथ को तेला के बाद, वासुपूज्य को एक उपवास के बाद और शेष तीर्थंकरों को बेला के बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है।[२]

केवलज्ञान उत्पत्ति के स्थान— ऋषभदेव को पूर्वताल नगर के शकटामुख वन में, नेमिनाथ को गिरनार पर्वत पर, पार्श्वनाथ को आश्रम के समीप, भगवान महावीर को ऋजुकूला नदी के तट पर और शेष तीर्थंकरों को अपने-अपने नगर के उद्यानों में ही केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।[३]

प्रत्येक तीर्थंकरों ने जिस वृक्ष के नीचे दीक्षा ली है उसी वृक्ष के नीचे उन्हें केवलज्ञान हुआ है ऐसा प्रतिष्ठा तिलक ग्रन्थ में उल्लेख है।

मुक्ति प्राप्ति के आसन—ऋषभनाथ, वासुपूज्य और नेमिनाथ पर्यंक आसन से तथा शेष तीर्थंकर कायोत्सर्ग आसन से स्थित हो मोक्ष गए हैं।[४]

योग निरोध काल— ऋषभदेव ने मुक्ति के पूर्व चौदह दिन तक योग निरोध किया। महावीर स्वामी ने दो दिन और शेष तीर्थंकरों ने एक-एक मास तक योग निरोध किया है[५]।

१.२.३.४.५. हरिवंश पु. प. ६०।

वीर भगवान के निर्वाण होने के पश्चात् तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष काल के व्यतीत होने पर 'दुषमा' नामक पंचम काल प्रवेश करता है।

अनुबद्ध केवली— जिस दिन महावीर भगवान सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। गौतम स्वामी के मुक्ति जाने के दिन श्री सुधर्मस्वामी केवली हुए और इनके मोक्ष जाने के दिन जंबूस्वामी केवली हुए। जंबूस्वामी के सिद्ध होने पर फिर कोई अनुबद्ध केवली नहीं हुए। गौतम स्वामी से लेकर जंबूस्वामी तक काल ६२ वर्ष प्रमाण है।

श्रुतकेवली— नंदी, नंदिमित्र, अपराजित, गोबर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँच द्वादशांग ज्ञान के धारी श्रुतकेवली हुए हैं। इनका काल १०० वर्ष प्रमाण है। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु से दीक्षित, मुकुटधरों में अंतिम चन्द्रगुप्त सम्राट ने जिन दीक्षा ली थी, इसके बाद मुकुटबद्ध राजा मुनि नहीं हुए।

दशपूर्वी— विशाखाचार्य, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह आचार्य ग्यारह अंग और दश पूर्व के धारी 'दशपूर्वी' कहलाये। इनका काल १८३ वर्ष है।

ग्यारह अंगधारी— नक्षत्राचार्य, जयपाल, पांडु, ध्रुवसेन और कंसार्य ये पाँच मुनि ग्यारह अंगधारी हुए हैं इनका काल २२० वर्ष है।

आचारांग धारी— सुभद्राचार्य, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चार आचार्य एक आचारांग मात्र के धारी हुए हैं। इनका काल ११८ वर्ष है। गौतम स्वामी से लेकर लोहाचार्य तक ६३+१००+१८३+२२०+११८=६८३ वर्ष में अंगधारी हुए हैं। इनके बाद इस भरत क्षेत्र में कोई भी आचार्य अंग पूर्व के धारक नहीं हुए हैं। उनके अंशों के जानने वाले अवश्य हुए हैं।

जो श्रुततीर्थ, धर्म की प्रवृत्ति में कारण है वह श्रुतपरंपरा बीस हजार तीन सौ सत्तरह (२०३१७) वर्षों तक यहाँ चलता रहेगा। अनंतर पंचम काल के अंत में व्युच्छेद को प्राप्त हो जावेगा।

इतने मात्र समय में प्रायः चातुर्वर्ण्य संघ जन्म लेता रहेगा। अर्थात् उपर्युक्त ६८३+२०३१७=२१००० वर्ष तक धर्मतीर्थ परंपरा अव्युच्छिन्न रहेगी। तात्पर्य यह हुआ कि पंचम काल के अंत तक धर्म व चतुर्विध संघ विद्यमान रहेगा।

राज्य परंपरा—

वीर प्रभु के निर्वाण के बाद 'पालक' नामक अवन्ति सुत का राज्याभिषेक हुआ। पालक का ६० वर्ष , विजय वंशियों का १५५ वर्ष, मुरुंडवंशियों का ४०, पुण्यमित्र का ३०, वसुमित्र-अग्निमित्र का ६०, गंधर्व का १००, नरवाहन का ४०, भृत्य-आंध्रों का २४२, गुप्तवंशियों का २३१ वर्ष प्रमाण राज्य काल रहा है। पश्चात् इंद्र का सुत कल्की उत्पन्न हुआ, इसका नाम चतुर्मुख, आयु ७० वर्ष और राज्यकाल ४२ वर्ष रहा। श्री वीरप्रभु के सिद्ध होने के बाद छह सौ पाँच वर्ष और पाँच माह व्यतीत होने पर 'विक्रम' नामक शक राजा हुए हैं। उनके बाद तीन सौ चौरानवे वर्ष, सात माह व्यतीत होने पर प्रथम कल्की हुआ है।" (त्रिलोकसार)

आचारांगधरों के २७५ वर्ष पश्चात् कल्की राजा को पट्ट बांधा गया। ६८३+२७५+४२=१००० वर्ष। उस कल्की ने श्रमण साधु से प्रथम ग्रास को शुल्क रूप में माँगा तब मुनि 'यह अंतरायों का काल है" ऐसा समझकर निराहार चले गये, उस समय उनमें से किसी एक को अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया, तब कोई असुरदेव ने अवधिज्ञान से मुनिगणों के उपसर्ग को जानकर, उसे धर्मद्रोही मानकर उस कल्की को मार डाला पुनः अजितंजय नाम के उसके पुत्र ने 'मेरी रक्षा करो' ऐसा कहकर उस देव के चरणों में नमस्कार किया और उस देव ने 'धर्मपूर्वकराज्य करो' ऐसा कहकर उसकी रक्षा की और वह जैनधर्मी बन गया।

ऐसा हजार-हजार वर्ष में एक-एक कल्की और पाँच सौ— पाँच सौ वर्षों के पश्चात् उनके बीच-बीच में एक-एक उपकल्की होते हैं। प्रत्येक कल्की के समय पंचमकालवर्ती एक-एक साधु को अवधिज्ञान प्राप्त होता है और उस समय चातुर्वर्ण्य संघ

अल्प हो जाते हैं।

पंचम काल के अंत समय जलमंथन नामा अंतिम कल्की होगा, उस समय 'वीरांगद' नाम के मुनि, 'सर्वश्री आर्यिका, अग्निल श्रावक और पंगुश्री श्राविका होंगी। अंतिम कल्की मुनिराज के आहार का प्रथम ग्रास शुल्क रूप में माँगेगा तब मुनि उसे देकर अंतराय करके वापस जाकर अवधिज्ञान को प्राप्त करके आर्यिका, श्रावक और श्राविका को बुलाकर कहेंगे कि अब पंचम काल का अंत आ चुका है, हमारी और तुम्हारी तीन दिन की आयु शेष है। चारों सल्लेखना से मरण करके सौधर्म स्वर्ग जायेंगे और कुमार देव द्वारा मार दिये जाने पर वह कल्की नरक जायेगा। प्रातःकाल धर्म का नाश, मध्याह्न में राजा का नाश और सूर्यास्त समय अग्नि का अभाव हो जावेगा।

छठा काल

पश्चात् तीन वर्ष, आठ माह और एक पक्ष के बीत जाने पर महाविषम दुषमा दुषमा नाम का छठा काल प्रविष्ट होगा। उस समय मनुष्यों की ऊँचाई तीन हाथ से एक हाथ तक, आयु बीस से सोलह वर्ष तक होगी। वे कंदमूल, फल, मत्स्य माँसादि खायेंगे, नंगे वनों में विचरेंगे। अंधे, गूंगे, बधिर, कुरूप आदि होंगे। नरक और तिर्यञ्चगति से आयेंगे और इन्हीं दो गतियों में जायेंगे।

उनचास दिन कम इक्कीस हजार वर्ष के बीतने पर संवर्तक नामक वायु से महाप्रलय होगा। उस समय बहत्तर युगलतथा और भी संख्यात जीवों को देव विद्याधर दया से विजयार्ध की गुफा आदि में सुरक्षित रखेंगे। यहाँ ४९ दिन तक बर्फ, क्षार, विष, अग्नि आदि की वर्षा से सब पर्वत आदि समाप्त होकर एक योजन तक पृथ्वी जल जावेगी।

अनंतर उत्सर्पिणी काल प्रवेश करेगा। तब जल, दूध, घृत और अमृत की वर्षा होकर पृथ्वी अच्छी हो जावेगी। ये युगल जीव गुफाओं से निकलेंगे। धीरे-धीरे आयु, ऊँचाई, बल आदि बढ़ते-बढ़ते इक्कीस हजार वर्ष समाप्त होकर द्वितीय काल प्रवेश करेगा। इसके हजार वर्ष शेष रहने पर अर्थात् बीस हजार वर्ष बीत जाने पर कुलकरों की उत्पत्ति होगी पुनः अंतिम कुलकर से श्रेणिक का जीव 'महापद्म' नाम का तीर्थंकर होगा तब

से पुनः धर्म की परंपरा चलेगी।

इस प्रकार भरत क्षेत्र में यह काल परिवर्तन चलता रहता है।

प्रशस्ति

शांतिनाथं जिनं नौमि, सर्वशांतिविधायिनम्।
शांतिसागरयोगीशं, वंदेऽहं भवशांतये।।१।।
श्री देशभूषण सूरिं, क्षुल्लिकाव्रतदायिनम्।
महाव्रतप्रदं वंदे, सूरिं श्रीवीरसागरम्।।२।।
चतुर्विंशतितीर्थेशां, आख्यानं सुखदायकं।
ज्ञानमत्या कृतं स्थेयात्, आचन्द्रार्कं श्रियै भवेत्।।३।।

♦♦♦♦♦♦♦♦

वीर महानिर्वाण के, पच्चीस सौवें वर्ष।
'चौबीस तीर्थंकर' कृती, रचना पूर्ति सहर्ष।।१।।
'ज्ञानमती' गणिनी महा-व्रतिनी मैं अल्पज्ञ।
महापुराणाधार से, रचना हुई मनोज्ञ।।२।।
यावत् मेरु स्थिर रहे, तावत् यह कृति सार।
सब जन जन के मन बसे, सबको हो सुखकार।।३।।

इति भद्रं भूयात्

❖❖❖❖❖❖❖

भजन

तर्ज-सज धज कर.....

तेरी चंदन सी रज में, हम उपवन खिलाएंगे।
कुंडलपुर के महावीरा, तेरा महल बनाएंगे।।

जन्मे जहां खेले जहां, त्रिशला माँ के नन्दन।
उस कुंडलपुर की माटी का, सचमुच कण-कण चन्दन।।

चन्दन सी उस माटी को हम, सिर पर लगाएंगे।
कुण्डलपुर के महावीरा, तेरा महल बनाएंगे।।१।।

सोने का नंद्यावर्त महल, सिद्धारथ जी का था।
मणियों के पलंग पर त्रिशला ने, सपनों को देखा था।।

उन सपनों को सच्चे करके, फिर से दिखाएंगे।
कुण्डलपुर के महावीरा तेरा महल बनाएंगे।।२।।

प्राचीन इक मंदिर प्रभू का, कुण्डलपुर में है।
नालन्दा के नजदीक ''चन्दना'', दर्शन मिलते हैं।।

भावना सभी भक्तों की हम, प्रभु तक पहुँचाएंगे।
कुण्डलपुर के महावीरा, तेरा महल बनाएंगे।।३।।

❖❖❖

भजन

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-देख तेरे संसार.....

स्वर्णिम शरदपूर्णिमा तिथि का है स्वर्णिम इतिहास,
धरा पर उदित हुआ इक चाँद।। टेक.।।

ज्ञानमती माता की कहानी।
जुड़ी है इससे याद पुरानी।।
शरदपूर्णिमा की रात्री में हुआ जन्म विख्यात,
धरा पर उदित हुआ इक चाँद।।१।।

मन में जब वैराग्य समाया।
शरदपूर्णिमा ही दिन आया।।
सदी बीसवीं में पहली बाला ने किया गृह त्याग,
धरा पर उदित हुआ इक चाँद।।२।।

दो हजार दो का सन् आया।
स्वर्णमयी इक अवसर लाया।।
सन् उन्निस सौ बावन की वह घटना आती याद,
धरा पर उदित हुआ इक चाँद।।३।।

ऋषभदेव का युग दिखलाया।
सतयुग का इतिहास बनाया।।
निजपर के कल्याण के संग करती हैं तीर्थ विकास,
धरा पर उदित हुआ इक चाँद।।४।।

अमृतमय हों वर्ष तुम्हारे।
ऐसे हैं शुभ भाव हमारे।।
शरदपूर्णिमा के दिन यह ''चन्दना'' करे नव आश,
धरा पर उदित हुआ इक चाँद।।५।।

❖❖❖

वर्तमान चौबीसी विवरण

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
सं.	तीर्थंकरनाम	जन्मनगर	पिता	माता	गर्भतिथि	जन्मतिथि	तप तिथि	केवलज्ञान	निर्वाण	शरीर की अव.	आयु	मुक्ति स्थान
१	वृषभ	अयोध्या	नाभिराज	मरुदेवी	आषाढ़ कृ. २	चै. कृ. ९	चै. कृ. ९	फाल्गुन कृ. ११	माघ कृ. १४,	५०० धनुष	८४लाख पूर्व वर्ष	कैलाशगिरि
२	अजित	अयोध्या	जितशत्रु	विजया	ज्येष्ठ कृ. अमा.	माघ शु. १०	माघ शु. १०	पौष शु. ११	चैत्र शु. ५,	४५० "	७२ "	सम्मेदाचल
३	संभव	श्रावस्ती	दृढरथ	सुषेणा	फाल्गुन शु. ८	कार्तिक शु. १५	मगसिर शु. १५	कार्तिक कृ. ४	चै. शु. ६,	४०० "	६० "	"
४	अभिनंदन	अयोध्या	स्वयंवर	सिद्धार्था	वैशाख शु. ६	कार्तिक कृ. १२	माघ शु. १२	पौष शु. १४	चैत्र शु. ६,	३५० "	५० "	"
५	सुमति	"	मेघरथ	सुमंगला	श्रावण शु. २	चैत्र शु. ११	वैशाख शु. ९	चैत्र शु. ११	चैत्र शु. ११,	३०० "	४० "	"
६	पद्मप्रभ	कौशाम्बी	धरणराज	सुसीमा	माघ कृ. ६	कार्तिक कृ. १३	कार्तिक कृ. १३	कार्तिक कृ. १५	फाल्गुन कृ. ४,	२५० "	३० "	"
७	सुपार्श्व	बनारस	सुप्रतिष्ठ	पृथ्वीषेणा	भाद्रपद शु. ६	ज्येष्ठ शु. १२	ज्येष्ठ शु १२	फाल्गुन कृ. ६	फाल्गुन कृ. ७,	२०० "	२० "	"
८	चन्द्रप्रभ	चन्द्रपुर	महासेन	लक्ष्मणा	चैत्र कृ. ५	पौष कृ. ११	पौष कृ. ११	फाल्गुन कृ. ७	फाल्गुन शु. ७,	१५० "	१० "	"
९	पुष्पदंत	काकंदी	सुग्रीव	जयरामा	फाल्गुन कृ. ९	मगसिर शु. १	मगसिर शु. १	कार्तिक शु. २	भाद्रपद शु. ८,	१०० "	२ "	"
१०	शीतल	भद्रपुर	दृढ़रथ	सुनंदा	चैत्र कृ.८	माघ कृ. १२	माघ कृ. १२	पौष कृ. १४	आश्विन शु. ८,	९० "	१ "	"
११	श्रेयांस	सिंहपुर	विष्णुमित्र	नन्दा	ज्येष्ठ कृ. ६	फाल्गुन कृ. ११	फाल्गुन कृ. ११	माघ कृ. अमा.	श्रावण शु. १५,	८० "	८४ लाख वर्ष	
१२	वासुपूज्य	चंपापुर	वसुपूज्य	जयावती	आषाढ़ कृ. ६	फाल्गुन कृ. १४	फाल्गुन कृ. १४	माघ शु. २	भाद्रपद शु. १४,	७० "	७२ "	चंपापुर
१३	विमल	कांपिल्य	कृतवर्मा	जयश्यामा	ज्येष्ठ कृ. १०	माघ शु. ४	माघ शु. ४	माघ शु. ६	आषाढ़ कृ. ८,	६० "	६० "	सम्मेदाचल
१४	अनंत	अयोध्या	सिंहसेन	जयश्यामा	कार्तिक कृ. १	ज्येष्ठ कृ. १२	ज्येष्ठ कृ. १२	चैत्र कृ. अमा.	चैत्र कृ. अमा.,	५० "	३० "	"
१५	धर्मनाथ	रत्नपुर	भानुराज	सुप्रभा	वैशाख शु. १३	माघ शु. १३	माघ शु.१३	पौष शु. १५	ज्येष्ठ शु. ४,	४५ "	१० "	"
१६	शांतिनाथ	हस्तिनापुर	विश्वसेन	ऐरादेवी	भाद्रपद कृ. ७	ज्येष्ठ कृ. १४	ज्येष्ठ कृ. १४	पौष शु. १०	ज्येष्ठ कृ. १४,	४० "	१ "	"
१७	कुंथुनाथ	"	सूरसेन	श्रीकांता	श्रावण कृ. १०	वैशाख शु. १	वैशाख शु. १	चैत्र शु. ३	वैशाख शु. १,	३५ "	९५ हजार वर्ष	"
१८	अरनाथ	"	सुदर्शन	मित्रसेना	फाल्गुन कृ. ३	मगसिर शु. १५	मगसिर शु. १०	कार्तिक शु. १२	चैत्र कृ. अमा.,	३० "	८४ "	"
१९	मल्लिनाथ	मिथिलानगरी	कुंभराज	प्रजावती	चैत्र शु. १	मगसिर शु. ११	मगसिर शु. ११	पौष कृ. २	फाल्गुन शु. ५,	२५ "	५५ "	"
२०	मुनिसुव्रत	राजगृही	सुमित्र	सोमा	श्रावण कु. २	वैशाख कृ. १२	वैशाख कृ. १०	वैशाख कृ. ९	फाल्गुन कृ. १२,	२० "	३० "	"
२१	नमिनाथ	मिथिला	विजय	वप्पिला	आश्विन कृ. २	आषाढ़ कृ. १०	अषाढ़ कृ. १०	मगसिर शु. ११	वैशाख कृ. १४,	१५ "	१० "	"
२२	नेमिनाथ	द्वारावती	समुद्रविजय	शिवादेवी	कार्तिक शु. ६	श्रावण शु. ६	श्रावण कृ. ६	आश्वन शु. १	आषाढ़ शु. ७,	१० "	१ "	उर्जयंतगिरि
२३	पार्श्वनाथ	बनारस	अश्वसेन	ब्राह्मी वामादेवी	वैशाख कृ. २	पौष कृ. ११	पौष कृ. ११	चैत्र कृ. १४	श्रावण शु. ७,	९ हाथ	१०० वर्ष	सम्मेदाचल
२४	महावीर	कुंडलपुर	सिद्धार्थ	प्रियकारिणी-त्रिशला	आषाढ़ शु. ६	चैत्र कृ. १३	मगसिर कृ. १०,	वैशाख शु. १०	कार्तिक कृ. अ०,	७ हाथ	७२ वर्ष	पावापुर